



पञ्जीकृत ट्रस्ट



जन-ज्ञान

(मासिक)

सम्पादक

—राकेशरानी

दूरभाष : ५-६६३६

—पता

१५६७, हरध्यानसिंह मार्ग

निकट ३१-नाईवाला

करौल बाग, नई दिल्ली-५

वार्षिक मूल्य १५)

विदेश में — १ पाँड

आजोवन—२५१)

वर्ष ६ : अंक ६

फाल्गुन संवत् २०३०

फरवरी—१९७४

सम्पादकीय

बड़ी कृपा होगी

कदम-कदम पे हैं खूंखार दरिन्दों के गिरोह,
आदमीयत को बचाओ, बड़ी कृपा होगी।
जो जाग कर भी बहाना किए हैं सोने का,
उठा के उन को बिठाओ, बड़ी कृपा होगी।

पर इस बड़ी कृपा को करे कौन ? यह प्रश्न
उभरा, ऊपर की पंक्तियों को एक मासिक पत्रिका
में पढ़ते हुए !

कोई भी अच्छा काम आज अपराध बन चुका
है। अधर्म की आंधी ने सब परिभाषाएं ही बदल
दी हैं। सत्य असत्य बना दिया गया है। ऐसा लग
रहा है कि शैतानको ही भगवान मानकर यह दुनियां
दौड़ी चली जा रही है, कारवां कहां जा कर रुकेगा
यह भी कौन जानता है !

आज आवश्यकता है कि हम सभी अपने को
टटोलें, आत्म निरीक्षण करें और देखें कि हमारे
अपने जीवन में क्या त्रुटियां हैं ?

दूसरों पर आरोप लगाने से पहले यदि हम एक
क्षण के लिए आत्म निरीक्षण कर लिया करें तो
हमारी बहुतसी उलझनें स्वयं ही सुलभ सकती हैं।

धर्म के उपदेशक धर्म को छोड़ रहे हैं। सत्य के
प्रसारक असत्य की राह पर चलने में गौरव मानते
हैं। तप, त्याग, सादगी केवल नारों की वस्तु बन
गई है। हमारी कथनी और करनी में जमीन-आस-
मान का अन्तर आ चुका है।

यह सच है कि जो नहीं जानता उसे रास्ता
बताया जा सकता है पर जानबूझ कर गुमराह व्य-
क्ति को राह बताना व्यर्थ है। स्थिति की गंभीरता
में हम भी कवि की पंक्तियों की आवाज गुंजाते हुए
सभी से कहना चाहते हैं कि—

आज समय आ गया है कि हम सत्य धर्म और
मानवता की रक्षा के लिए प्रबल स्वर में शंख नाद
करें। अपने आस-पास के सारे वातावरण को बद-
लने के लिए हम स्वयं जागें और अपना कर्तव्य
पालन करते हुए बाधाओं आपदाओं का उपहार रूप
में स्वागत करें। यदि सत्य के प्रसारक हिम्मत न
छोड़ें, तो बड़ी कृपा होगी ! —राकेश रानी

१५ फरवरी १९७४ से

जन-ज्ञान (मासिक) का वार्षिक शुल्क १५) रुपये होगा

जो सदस्य १५ फरवरी से पहले अपना शुल्क भेज देंगे वह १२) के हिसाब से भेज सकेंगे। सदस्य ३ वर्ष तक का शुल्क भेज सकते हैं।

कृपया मनोआर्डर कूपन पर अपनी सदस्य संख्या अवश्य लिखें।

—व्यवस्थापक

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी के उपलक्ष्य में

नए अपूर्व महान् प्रकाशन

१—शतपथ ब्राह्मण [प्रथम काण्ड]

शतपथ ब्राह्मण का यह अपूर्व भाष्य स्वर्गीय स्वामी समर्पणानन्द जी महाराज की जीवन भर की साधना का सुपरिणाम है। ४०० से अधिक पृष्ठों का यह ग्रन्थ अपनी उपमा आप ही है। बढिया कपड़े की जिल्द के इस ग्रन्थ का मूल्य १५) है।

२—यजुर्वेद-सामवेद-भाष्य

यजुर्वेद का भाष्य महर्षि दयानन्द कृत और सामवेद भाष्य आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री कृत एक ही जिल्द में प्रकाशित किया गया है।
लागत मूल्य ४१)।

३—ऋग्वेद [६ मण्डल]

महर्षि दयानन्द कृत भाषा भाष्य मूल्य ४१)।

४—यजुर्वेद भाष्य

महर्षि दयानन्द कृत भाषा भाष्य मूल्य १०)। सजिल्द मूल्य १८)।

व्यवस्थापक—जन-ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली-५

दयानन्द संस्थान का
 एक और अनुपम प्रकाशन

सामवेद का आध्यात्मिक भाष्य

वेदों के सर्वोपरि विद्वान् पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार,
 पं० हरिशरण सिद्धान्तलंकार आदि विद्वानों को
 वेद पढ़ाने वाले

पं० विश्वनाथ जी विद्यामार्तण्ड द्वारा
 ज्ञान का भण्डार यह भाष्य

अब प्रेस में दे दिया गया है ।

मूल्य २०) – किन्तु थोड़ी-सी प्रतियाँ १०) में
 देने का निश्चय : शिवरात्रि तक

अपना आदेश तुरन्त पूर्ण धन सहित भेजिये

बढ़िया कागज : सुनहरी जिल्द : $5\frac{1}{2} \times 8$ इंच साइज

●
 व्यवस्थापक

दयानन्द संस्थान

१५६७, हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-५

१०१) में वेद भाष्य के सदस्य बनाने की अवधि शिवरात्रि तक बढ़ायी गयी । १-२-५-१० जितने भी बना सकें वेद भाष्य के सदस्य बनाइए ।

वेद भाष्य के अधिक-से-अधिक सदस्य बनाकर कागज के भीषण संकट का आर्यजन सामना करें

नई दिल्ली, दयानन्द संस्थान ट्रस्ट की एक आवश्यक बैठक यहां स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती की अध्यक्षता में १६ जनवरी को सम्पन्न हुई । बैठक में श्री प्रो० रामसिंह जी अध्यक्ष अखिल भारतीय हिन्दू महासभा, श्री देसराज जी चौधरी भूतपूर्व उप-महापौर दिल्ली, श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती भू० पू० संसद् सदस्य, आचार्य जगदीश विद्यार्थी एम० ए०, पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड, श्रीमती राकेश रानी जी, पं० भारतेन्द्र नाथ, श्री चन्द्रमोहन शास्त्री, श्री कुंवरपाल आर्य जोधपुर, व श्री पं मनोहर जी विद्यालंकार प्रभृति आर्य विद्वान् उपस्थित थे ।

बैठक में निश्चय किया गया कि देश-विदेश में बढ़ते हुए अज्ञान-पाखंड और अन्धविश्वासों के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन चलाकर, आर्यसमाज स्थापना शताब्दी को रचनात्मक रूप से मनाया जाएगा ।

यह भी निश्चय किया गया कि 'वेद' पर आधारित ऐसी पुस्तकें लिखवायी व प्रकाशित करायी जाएं जिन्हें आर्य समाजेतर व्यक्ति और वच्चे सुगमता से हृदयंगम कर सकें ।

गंभीर विषयों पर उच्चकोटि के ग्रंथों के प्रकाशन के साथ ही छोटे-छोटे छोटे प्रचार ट्रैक्ट प्रकाशित करने का भी निश्चय किया गया ।

वेद भाष्य प्रकाशन की प्रगति पर संतोष प्रकट करते हुए पं० भारतेन्द्र नाथ जी से आग्रह किया गया कि वे अपने स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए अन्नादि ग्रहण करना आरम्भ करें । निश्चय हुआ कि आर्य जनता से प्रार्थना की जाए कि वह कागज के बढ़ते हुए मूल्यों को ध्यान में रखते हुए वेद-भाष्य प्रकाशन के कार्य में उत्साह और उदारता से सहयोग दें । १०१) में वेद-भाष्य के सदस्य बनाने की अवधि शिवरात्रि तक बढ़ाने का निश्चय किया गया और आशा व्यक्त की गई कि आर्य समाज और आर्य जन कम से कम १० नए सदस्य बनाकर इस संकट में अपना हाथ बँटाएं । संस्थान द्वारा संचालित वेद मंदिर के कार्य से भी सभी को परिचित कराया गया ।

देश और विदेश में नयी शैली से प्रभावपूर्ण साहित्य प्रसारित करने की आवश्यकता पर बल देते हुए संस्थान को अधिकाधिक शक्ति सम्पन्न बनाने के लिए सभी का और भी सहयोग मिलेगा । इस भावना के साथ शान्ति पाठ के बाद बैठक समाप्त हुई ।

मेरे हृदय का नन्दिर से पालिश्व रहा हूँ ~ भारतेन्दु

तुम क्या सोचते हो ?

तुम कौन हो ?

जो करते हो उस से तुम्हें क्या मिलता है ! कितना आनन्द और शांति तुम्हें मिली ? सोचो और अपना रास्ता बदलो ।

जिस रास्ते पर चलने से दुःखन मिले, वह धर्म है ।

धर्म एक ही हो सकता है और वह न बदलता है न मिटता है ।

धर्म में देश, काल, व्यक्ति की सीमाएँ नहीं आतीं ।

धर्म का रास्ता परमात्मा का बताया रास्ता है, जो उस पर चलता है, परमात्मा का प्यार उसे मिलता है ।

दुनियाँ के बनाने के साथ ही परमात्मा ने मनुष्य को धर्म का रास्ता भी बताया वह रास्ता भूलने से दुःख पैदा हुए । हमारा आग्रह है कि भूले हुए उस रास्ते को फिर खोजो—खोजने और परखने पर सच्चायी तुम्हें मिल जाएगी ।

देखो.....परमात्मा का रास्ता वेद की ऋचाओं में आज भी प्रकाश की किरणों फैलाता, हमें बुला रहा है । उसे देखो.....तुम्हारे सारे दुःख मिट जाएंगे ।

हमारे साथ आओ !

समय, काल और देशों की सीमाओं के पार जाकर हम अपने को देखें तो संपूर्ण धरती हमें एक परिवार दिखायी देगी । ऐसा परिवार, जिस में ३००-४०० करोड़ मनुष्य रहते हैं ।

सब की समस्याएं, आवश्यकताएं और लक्ष्य एक हैं । किन्तु मत-वाद-देश की दीवारों ने हमारे चिन्तन में बाधा उपस्थित कर दी है । हम परिवार की दृष्टि से सोचना भूलकर बैठे हुए ढंग से, छोटे दायरों के ढंग से सोचने लग गए हैं ।

हमारा जीवन सत्य को भूल चुका है । असत्य को ही सत्य समझ हम एक ऐसे चक्कर में फँस गए हैं कि दुःख और कष्ट हमें, जीवन के आनन्द से दूर ले जा रहे हैं ।

हम उस सत्य के प्रसारक हैं जो सभी को मनुष्य बनाता है। जो आप के मन में आनन्द की धारा बहाता है। सारे बंधन तोड़ कर दुःखों को जड़ से नष्ट कर देने के लिए हम संसार के सभी मनुष्यों को प्रकाश का सच्चा रास्ता बता रहे हैं। हमारे साथ आओ ! आप के सारे दुःख मिट जाएंगे।

सब से कह दो !

जो भी इन पंक्तियों को पढ़े वह दुनियां के हर आदमी तक यह संदेश पहुँचा दे कि भारत में फिर एक बार सच्चे ज्ञान की ज्योति उभरी है। ईश्वर का संगीत फिर से एक बार गूँज उठा है। जीवन का अंधेरा अब दूर होने वाला है।

स्वर्ग की कहानियाँ आप ने सुनीं थीं अब हम इसी धरा को स्वर्ग बनाएंगे। पाप को मिटाएंगे और ऐसे गीत गाएंगे कि सभी अपने दुःख भूल जाएं।

एक महापुरुष ऋषि दयानन्द ने हमें परमात्मा की वाणी 'वेद' के ज्ञान से हमें परिचित करा दिया है। वह ज्ञान का समुद्र सारी धरती को पवित्र कर देगा।

हम सब एक सच्चायी के रास्ते पर चलने का संदेश लेकर निकले हैं। हम दुनियां को नयी दुनियां बनाने चले हैं। जाओ ! सब से कह दो, हम अब कहीं अज्ञान का अंधेरा नहीं रहने देंगे।

हम कौन हैं ?

आप पूछ सकते हैं कि हम कौन हैं ? हमारा उत्तर होगा कि हम हैं परमात्मा के पुत्र, जो संसार से शैतान की हस्ती मिटाना चाहते हैं।

हम दुनियां के प्रत्येक मनुष्य से प्यार करते हैं। हम हर मनुष्य का भला चाहते हैं। कोई हमारा दुश्मन नहीं है। हम सभी को अपना भाई मानते हैं।

परमात्मा के सच्चे ज्ञान का प्रकाश धरती पर फैलाना हमारा लक्ष्य है। मनुष्यों को ईश्वर का पुत्र बनाना हमारी इच्छा है। हम वह ज्ञान दे रहे हैं जिसकी छाया में हिंसा, द्वेष, भूठ, और युद्ध का जहर सदा के लिए मिट जाएगा।

भारत के एक महान् पुरुष स्वामी दयानन्द के हम शिष्य हैं। जिन्होंने मनुष्य मात्र को प्यार करने का, सभी की भलाई में अपनी भलाई समझने का उपदेश दिया। उसी के शिष्य हम सारी दुनियां में प्यार बाँटने निकले हैं। दुःख मिटाना और आनन्द फैलाना हमारा लक्ष्य है।

दिव्य स्वप्नों की खोज

हमारे पथ प्रदर्शक विश्व वंश महर्षि दयानन्द ने कुछ स्वप्न देखे थे, कुछ रेखा-चित्र उनके मस्तिष्क में उभरे थे, उन रेखा चित्रों का मूल्यांकन जिस दिन ऋषि के अनुयायी कर लेंगे, उस दिन उन की पूर्ति होने में भी देर नहीं लगेगी !

ऋषि के स्वप्नों का संसार दुःख-कष्ट क्लेश आदि से मुक्त संसार है। उसमें जातिगत, वर्ग वाद और नीच-ऊँच की विवादास्पद द्वेष लहरों के लिए कोई स्थान नहीं। मनुष्य ईश्वर का पुत्र है। पिता के आदेशों का पालन पुत्र का कर्त्तव्य है। पुत्र पिता का आज्ञाकारी ही होता है। और प्रभु ऐसा पिता है जिस का पुत्र अपराध पाप कर ही नहीं सकता।

किन्तु हम ऋषि के अनुयायी पिता परमात्मा से अभी बहुत दूर हैं। प्रभु से दूर हैं तो सत्य से भी दूर हैं। और सत्य से दूर रहने वाला और कुछ भी हो महर्षि दयानन्द का अनुयायी नहीं हो सकता।

महात्मा गांधी के उत्तराधिकारियों ने जैसे गांधीवाद को समाप्त किया वैसे ही ऋषि के अनुयायियों ने दयानन्द के स्वप्नों को समाप्त कर डाला है। ऋषि दयानन्द की जय का नारा लगाते हुए हम ने कभी यह नहीं सोचा कि इसका अर्थ क्या है ?

ऋषि दयानन्द के शब्दों को प्रमाण रूप में स्वीकार करते हुए भी हमने सदा उन के आदेशों की अवहेलना की है। जातिवाद के पुछले नामों के साथ लगा कर हम ने क्या उन के विचारों के विरुद्ध आचरण नहीं किया ? ईश्वर भक्ति की भावना को ठुकराकर हम ने क्या ऋषि के स्वप्नों को ही नहीं ठुंराया ? शक्ति पाकर निर्बल पर प्रहार करने की वृत्ति को क्या हम छोड़ सके हैं ? ऋषि ने कहा था कि जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर पर हानिमात्र करता है वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है।

मन रोता है जब दयानन्द के शब्दों से दूर दयानन्द के अनुयायियों को देखते हैं। ऋषि का लक्ष्य अधूरा पड़ा है किन्तु हमने उन का नाम लेकर मनमानी व्याख्याएँ की हैं। हम वह करते हैं जो हम चाहते हैं और वह सब कुछ भुला देते हैं जो ऋषि चाहते थे !

विचारों की क्रांति का यज्ञ अधूरा पड़ा है। मतवादों की समाप्ति का आन्दोलन चलाने का साहस हम खो चुके हैं। पाखंडों पर प्रहार करने में हमें भय लगने लगा है। जातिवाद की दीवारें गिराने के स्थान पर हम उन से प्यार करने लग गए हैं। रास्ता हम भूल गए, सत्य पर विश्वास नहीं, ईश्वर की ज्योति से प्रकाश हम ले नहीं पाए-फिर कैसे बढ़ेंगे और करेंगे दयानन्द का काम !

राजनैतिक दाँव पेंच धर्म पर अधिकार कर चुके हैं। धर्म पर आस्था लड़खड़ा चुकी है। चुनाव, गद्दियाँ, भाषण और प्रस्ताव से आगे हमारे पास कोई कार्यक्रम नहीं। काम करने के लिए कोई तैयार नहीं। मरने का साहस हम खो बैठे इस लिए जीने का ढंग भूल गए।

हमें तो यह भी समझ नहीं आ रहा कि किस से कहें कि भाई ! आओ ! ऋषि दयानन्द का काम करें। क्योंकि जो हम ठीक समझते हैं उसे ठीक समझने को कोई तैयार नहीं। और हमारा मस्तिष्क औरों के रास्ते को ठीक नहीं समझता।

हमारे मन और मस्तिष्क पर ऋषि का जो प्रभाव है उसके प्रकाश में हमारा जो भी चिन्तन है उस में कोई उलझन हमारे सामने नहीं है। हम चाहते हैं कि ऋषि के सभी अनुयायी एक साथ मिलकर करें—

१. वेद का, वेद की विचारधारा का प्रचार।
२. अध्यात्मवाद का, प्रभु से मिलने का मार्ग दर्शन।
३. मत-वादों पर प्रबल प्रहार।
४. जातिगत वर्ग भेदों का समूल नाश।
५. धर्म के उदात्त स्वरूप का संरक्षण।

फाल्गुन संवत् २०३०

६. वेद-सत्यार्थ प्रकाश—ऋषि जीवन का विभिन्न भाषाओं में प्रसार ।
७. अज्ञान—पाखंड का प्रबल खंडन ।
८. संगठन, आर्यसमाजें व संस्थाएं करें कार्य संचालन ।
९. उपदेशकों की सेना हो तैयार और दिया जाए उन्हें सर्वोच्च सम्मान ।
१०. संसार का प्रत्येक मनुष्य ईश्वर को माने, जाने और उस से मिले ! संसार एक हो, एक राह पर चले, एक ढंग से सोचे और अनेकता मिटे ।

इस १० सूत्री कार्य क्रम को कौन चलाएगा ? ऋषि के अनुयायी इस ओर कैसे, क्यों सोचेंगे ? उन के पास बहुत बड़े-बड़े काम हैं । बड़े-बड़े लक्ष्य हैं, पर हमारा प्रश्न है कि इस सब के बाद भी ऋषि का काम कौन करेगा ? और सब कुछ छोड़ कर कौन ऋषि के रेखा चित्रों में रंग भरेगा ?

पक्षपात का चश्मा आंखों से उतार कर हमारे विचार को पढ़िए और इन में कहीं भूल हो भ्रांति हो तो हमें बताइए । हम अपनी भूल सुधारने को तैयार हैं । किन्तु यदि आप को कुछ ठीक लगे तो फिर आइए, दयानन्द की सेना में भरती होकर अपने को ऋषि का सैनिक समझ कर काम में कल से ही लग जाइए ।

लाखों में वार करता है शूरमा अकेला । एक दयानन्द का सैनिक एक-एक क्षेत्र का काया कल्प कर सकता है । ऐसा सैनिक जो दयानन्द महाराज ऋषिराज के लिए अपने जीवन की भेंट चढ़ा सकता हो.....कौन है ? कहाँ है ? खोज रहा हूँ ।.....

बोध रात्रि का संदेश

शिव रात्रि को हम बोध रात्रि कहते हैं इसलिए कि इस दिन बालक मूलशंकर के मन में एक जिज्ञासा उभरी थी । उस जिज्ञासा ने एक नन्हें बालक को महान् व्यक्ति के रूप में परिवर्तित कर दिया ।

हमारे जीवन में भी बहुत सी घटनाएं घटित होती हैं । हम बहुत कुछ देखते हैं पर सब कुछ हमारे मन पर प्रभाव छोड़ते हुए भी कुछ प्रभाव नहीं छोड़ पाता । हम घटना चक्र के एक अंग बन जाते हैं । उस के विद्यार्थी बनने का भाव हमारे मस्तिष्क में नहीं उभरता ।

प्रत्येक पल एक चक्र सा चल रहा है । उस का अपना कुछ सन्देश भी होता है पर सन्देश की ध्वनि हृदयंगम करने की शक्ति कितनों में होती है ? जीवन का प्रवाह इतना वेगवान है कि उसमें खड़े रहकर मूक दर्शक बने रहना सब के लिए सम्भव नहीं होता ।

हम नहीं जानते कि आप क्या सोचते हैं पर हमारा मन जब बोध-रात्रि के वातावरण के आस पास मंडराता है तब मन में एक भाव उठता है कि कैसे संसार की पूजा पद्धतियों में सत्य को स्थापित किया जाए ? उपासना, नमाज, प्रेयर या कोई भी परमात्मा को पुकारने का ढंग मनुष्य की इस इच्छा का प्रतीक है कि वह प्रभु से कुछ कहना चाहता है ।

प्रभु से मिलने की इच्छा ने उसे भटकाया है । अपनी अल्प बुद्धि से मनुष्य ने अनेक कल्पनायें की हैं और उन कल्पनाओं में उस का मन भटका है और उस भटकन में उस ने मनचाही पद्धति से उस से मिलने को राह निकाली है ।

जन-ज्ञान (मासिक)

किन्तु सच्चाई यह है कि सभी ढंगों में प्रभु दूर होता गया और मनुष्य के मन की प्यास अधूरी रही ।

और सच तो यह है कि मनुष्य तब तक सच्चे अर्थों में मनुष्य नहीं बनता जब तक वह प्रभु का साक्षात्कार नहीं करता । प्रभु से दूरी मनुष्य को मनुष्यता से दूर करती है । इसलिये बोध रात्रि, शिवरात्रि का सच्चा सन्देश यह है कि—

प्रभु से मिलने की राह पर चलो । संसार को परमात्मा का सच्चा स्वरूप बताओ और उसे प्रेरित करो कि वह प्रभु मिलन की राह पर चले । अध्यात्म की पावन गंगा का प्रवाह जब तक जन मानस को पावन नहीं करता तब तक बोध रात्रि आती रहेगी, जाती रहेगी और मनुष्य भटकता रहेगा ।

देव दयानन्द का जीवन प्रभु से साक्षात्कार की प्रेरणा कर रहा है । काश कि हम इस दशा में सोच सकते !

काम या नारे

देश की उन्नति के लिए आवश्यक है कि सभी अनवरत काम करें । श्रम की साधना ही प्रत्येक क्षेत्र में लक्ष्मी का वरदान बरसा सकती है । किन्तु दुर्भाग्य सर्वत्र काम के स्थान पर नारों की भरमार है ।

मजदूर काम के समय में नारे लगाते हैं, विद्यार्थी पढ़ने के स्थान पर नारे दोहराते हैं । मंत्री से प्रधानमंत्री तक नारों से देश को बहकाते हैं । धर्म के प्रतिष्ठानों में भी नारे ही नारे हैं ।

जो जितना बड़ा नारा, जोरों से लगाता है वह उतना ही बड़ा नेता कहाता है । नारों की गुंज में काम सब बन्द हैं । ऐसा लगता है कि नारा ही आज के युग का मंत्र है । वही जीवन तंत्र है ।

राजनैतिक दल हों या धार्मिक संगठन, मजदूर सभाएं हों या साहित्यिक संसद् सभी नारों के बल पर चलते हैं । और जब नेतागिरि नारों से मिलती है, पूजा नारे लगाने पर हो जाती है तो कोई क्या बेवकूफ है जो काम का सिर दर्द मोल ले । देश, धर्म, लक्ष्य रसातल में जाएं, हमें क्या ? सब कुछ स्वाहा हो जाए हमें क्या ? हम तो नारे लगायेंगे, लच्छेदार भाषणों से जनता को बहकायेंगे, वह हमारी जय-जयकार करेगी और मरेगी । हम जियेंगे और बढ़ेंगे । हम जिन्दावाद फिर और की क्या चिन्ता ?

गाड़ी नारों पर चल रही है, आप भी सोचिए, आप कितने नारों के भक्त हैं ? काम को ठुकराकर आकाश महल बन सकते हैं जमीन स्वर्ग नहीं हो सकती ।

घरती को स्वर्ग बनाने के लिए नारे बेकार हैं यह तथ्य जिस दिन समझेंगे— जिस दिन काम की पूजा होगी और नारे ठुकराए जायेंगे जब रचनात्मक कामों का महत्त्व हमारे मन पर अधिकार जमा लेगा, तब हमारा भाग्योदय होगा ।

संसार का कोई देश भाषण या नारों से आगे नहीं बढ़ा । जीवन के लिए, प्रगति के लिए एक ही मार्ग है काम और बस काम ; काम के महत्त्व को क्या हम समझेंगे ? काम की महिमा को क्या हम जानेंगे ? काम की गरिमा कब पहचानेंगे ? या नारों की नगरी में ही खोए खोए हम अपना सभी कुछ खो देंगे ।

भाइयो और बहनो !

इन पंक्तियों द्वारा हम अपने मन के भाव आप के मन तक पहुँचाना चाहते हैं। हम नहीं जानते कि इस कार्य में हम कहां तक सफल होंगे किन्तु हमारा प्रयत्न है कि आप हमारे मन से निकलने वाले स्वरों को सुनें, समझें और यदि उन्हें आप भी अपने मन का गीत बना लें, तो हम समझेंगे, हमारा प्रयत्न सफल हुआ।

पिछले २१ वर्षों से हम ने दिन रात आर्यसमाज को जगाने का, उसका मार्ग बदलने का प्रयत्न किया है। अपने प्रयत्नों में हमें आशा से बढ़कर सफलता मिली है, जन मानस का अपार स्नेह हम पर बरसा है किन्तु मन में एक कसक है कि पता नहीं क्यों, आर्यसमाज के नेता नामधारी व्यक्तियों की कृपा को हम नहीं पा सके।

हम ने अपने को बहुत टटोला है, अपनी कमजोरियाँ जानने का भी यत्न किया है किन्तु बहुत चाह कर भी हम उन कारणों को नहीं समझ पाए जिस से हमें नेता वर्ग का भी सहयोग प्राप्त हो सकता। हमारे स्वप्नों का आर्यसमाज और है और आर्यसमाज के कर्णधारों की दृष्टि का आर्यसमाज और है। आर्यसमाज की व्याख्या का यह विभिन्न दृष्टिकोण हमारी समस्या है और शायद सब की भी। हम ने आर्यसमाज को जिस रूप में देखा है, समझा है, जाना है, जिस आर्यसमाज के हम अनुयायी हैं वह आर्यसमाज आज का आर्यसमाज नहीं है। वह आर्यसमाज आज का आर्यसमाज का संगठन नहीं है। हम इस आर्यसमाज को ऋषि दयानन्द का आर्य समाज बनाने के लिए यत्न करते रहे हैं, और करते रहेंगे। कोई जब तक हमारी भूल से हम को परिचित नहीं करा देता तब तक हम अपना मार्ग बदलने के लिए तैयार नहीं।

हम आर्यसमाज को उस अग्नि के रूप में जानते हैं जिस अग्नि की विद्यमानता में पाखंड जल कर राख हो जाते हैं। हम आर्यसमाज को उस संन्यासी के रूप में देखते हैं जो एकाकी होता हुआ भी सिंह की तरह गर्जना करता है। धन साधन न होते हुए भी जो धरती के सारे पाप-ताप-अज्ञान को मिटाने के लिए सूर्य की तरह चमकता है। हम उस सत्य प्रसारक आर्यसमाज के अनुयायी हैं जो सत्य के लिए दुनिया की सारी आसुरी शक्तियों से लोहा लेता है। हमारा आर्यसमाज समय के साथ २ बहने वाला संगठन नहीं, समय को बदलने वाला शक्तिशाली आंदोलन है।

सच तो यह है कि हमारा आर्यसमाज संसार का सब से ऊँचा, सब से महान् सब से शक्तिशाली, और गरिमावान् संगठन है। उस के पास सत्य की अजेय शक्ति है। ईश्वर विश्वास का अनुभव सबल है। ऋषि दयानन्द जैसे महान् दिव्य महापुरुष का आदर्श उस की प्रेरणा है। धरती पर कोई ऐसी शक्ति उत्पन्न नहीं हुयी जो हमारे आर्यसमाज को हटा सके।

भाइयो और बहनो !

हमारा मन देश देशान्तरों के सभी आर्यसमाजों को ऋषि के स्वप्नों का आर्य समाज बनाना चाहता है। हमारा विश्वास है कि जिस दिन सारा आर्यसमाज संगठन ऋषि दयानन्द का अनुयायी बन जाएगा उस दिन धरती पर उस क्रांति का अभियान आरंभ होगा, जिस के लिए गुरुदेव दयानन्द ने इस महान् संगठन की स्थापना की थी।

१९७५ में हम आर्यसमाज की शताब्दी मनाने जा रहे हैं। किन्तु आज भी इस महान् संगठन की तंद्रा भंग नहीं हुयी। सिंह आज भी सोया पड़ा है। संपूर्ण संगठन को ऋषि दयानन्द के स्वरो में जाग्रत कर हम भूमंडल पर वैदिक विचारधारा का साम्राज्य स्थापित करना चाहते हैं।

हमारी इच्छा है कि १९७५ तक हम देश का काया कल्प कर दें, हम विदेशों में सत्य का ज्योतिर्मय प्रकाश पहुँचा दें। हम कुछ ऐसा करें कि धरती का हर प्राणी जान जाए, मान जाए कि हमारा कल्याण ऋषि के बताए मार्ग पर चलने में ही है।

क्रांति और क्रांति

इस क्रांति शब्द में बड़ी मोहकता है, पर क्या क्रांति भाषणों से होगी, क्या क्रांति प्रस्तावों से होगी—? हम पूछते हैं क्या क्रांति आपस की फूट से होगी? दुनियाँ के ३०० करोड़ व्यक्तियों के विचारों को बदलने का नाम है क्रांति। संसार के मतवादों का अस्तित्व मिटाने का नाम है क्रांति। अज्ञान और पाखंडों को समाप्त करने का नाम है क्रांति।

बताओ, इस क्रांति के लिए कौन तैयार है? कौन तैयार है आज मरने के लिए—इसलिए कि ऋषि का लक्ष्य पूरा हो सके? काम करना और बात है, भाषण देना और बात है। त्याग का ढोंग रचना बहुत आसान है पर त्याग करना उतना ही कठिन है। हम आज ऋषि दयानन्द के शिष्यों में ऐसे व्यक्तियों का अत्यन्त अभाव अनुभव कर रहे हैं जो अपने जीवन को जिन्दा तिल तिल कर गला सकें, इसलिए कि आर्यसमाज जीवित रहे।

हमारा आग्रह है कि आज अगर धरती पर वेद की, ओ३म् की पताका लहर लहर लहरानी है तो हमें अपनी कार्य पद्धति में आमूल-चूल परिवर्तन करना होगा। आर्यसमाज के संगठनों को प्रबंध—विवाद आदि से ऊपर उठकर यह सोचना होगा कि हम देश विदेश में क्रांति यज्ञ का संचालन कैसे कर सकते हैं?

१. आर्यसमाजों को अपने-अपने क्षेत्र में आन्दोलनों का संचालक बनना होगा।
२. पाखंडों, मतों,वादों और समस्त अज्ञान के विरुद्ध तीव्र आन्दोलन चलाने होंगे।
३. अध्यात्म का पाठ स्वयं पढ़ना होगा। जीवन को पवित्र बनाना होगा और कुन्दन बन कर फिर अपने क्षेत्र में ऋषि के समान सिंह की भांति वीरता से काम करना होगा।
४. आपस की फूट, परस्पर का द्वेष भाव आर्यसमाज का सब से बड़ा शत्रु है। इस तथ्य को हम जितना भी शीघ्र समझ लें, उतना ही कल्याण है।
५. नारे बाजी, क्षणिक आन्दोलन, और दिखावटी प्रदर्शनों ने हमें जितनी हानि पहुंचायी है उतनी शायद ही किसी और ने पहुंचायी हो। हमारे धन का अपव्यय भी इन कारणों में हो रहा है। हमें इस दिशा में अत्यन्त सावधान रहना चाहिए।

आर्यसमाजें निम्न कार्य करें

- (क) शराब—माँस और अश्लीलता का विरोध।
- (ख) पाखंडों, नकली-फसली अवतारों के विरुद्ध युद्ध घोषणा।

फाल्गुन संवत् २०३०

११

- (ग) जातिवाद, नास्तिकता, फैशन, विलासिता आदि के विरुद्ध प्रबल प्रचार ।
- (घ) ईसाइयत, इस्लाम व सभी मनुष्यों द्वारा चलाए गए मतों की समाप्ति ।
- (ङ) धर्म के सच्चे स्वरूप का प्रचार ।
- (च) प्रभु से मिलने की आवश्यकता और प्रकार का मार्ग दर्शन ।
- (छ) अवैदिक दर्शन और अमानवीय दृष्टियों का मूलोच्छेदन ।
- (ज) आर्यसमाज की मान्यताओं का प्रबल प्रचार ।
- (झ) व्यक्ति के विकास का दिशा निर्देशन ।
- (ञ) सत्य ही सर्वोपरी है, मान्यता का सर्वोच्च सम्मान ।

इन दस कार्यों पर अगर हम अपनी शक्ति लगा दें तो क्या नहीं हो सकता ? पर आज इस दिशा में सोचने का अवकाश किसे है ? किस संगठन की किस अंतरंग सभा ने अपना समय इस कार्य के लिए दिया है कि आर्यसमाज कैसे आगे बढ़े ?

हम बहुत सोचते हैं पर हमारी छोटी बुद्धि में यह बात नहीं आती कि हमारे कर्णधारों को आखिर क्या हो गया है ! क्यों नहीं वे अपना दायित्व समझते ? क्यों नहीं उनके मन में अरमान मचलते कुछ काम करने के—हमारे पास हर समस्या का समाधान है पर इस बात का समाधान हम नहीं कर पा रहे कि आर्यसमाज के नेताओं को कैसे ऋषि दयानन्द की लक्ष्य पूर्ति में लगाया जाए ?

भाइयो और बहिनो !

आप में से जो भी इन पंक्तियों को पढ़े वह गंभीरता से सारी बातों पर विचार करे, हमने अज्ञान वश यदि कुछ गलत लिखा हो तो हम अपने विचारों पर पुनर्विचार के लिये तैयार हैं । पर यदि आप को इन बातों में कुछ भी सच्चाई दृष्टि गोचर हो तो हमारा आग्रह है कि आप अपनी कार्य पद्धति में, चिन्तन में परिवर्तन लाएं । जिस क्षण आपका चिन्तन बदलेगा उस क्षण क्रांति का जन्म होगा । तूफान आ रहे हैं हमारी आंखें सर्वनाश को उमड़ता हुआ देख रही हैं, पर हम सब कुछ मिटने से पहले एक बार पूरी शक्ति से तूफान और सर्वनाश से टकराने की तैयारी करना चाहते हैं । मानवता, सत्य, धर्म की रक्षा के लिये हम चाहते हैं कि एक बार फिर प्रभु के सच्चे पुत्र सिर पर कफन बांध कर खड़े हो जाएं । सत्य का अस्त्र हमारे साथ है इसलिये हमारा विश्वास है कि विजय हमारी होगी ।

दयानन्द के वीर सैनिको !

सुनो ! समय की पुकार को सुनो और जाग जाओ ! अपने-अपने क्षेत्र में ऋषि की सेना सजाओ और काम में लग जाओ ! उठो और आगे बढ़ो । बातें नहीं, काम करो ! नारों से बचो और काम करो ! दिखावे से बचो और काम करो !

ऋषि दयानन्द का काम करो ! ऋषि दयानन्द के दिखाए मार्ग पर चलो ! अपना जीवन बदलो, यह क्रांति का प्रथम चरण होगा । अपने परिवार बदलो, यह क्रांति की प्रथम विजय होगी । अपने आस पास को बदलो, यह क्रांति का प्रसार होगा ।

तुम सो रहे हो, और मैं रो रहा हूँ । तुम भटक रहे हो और मैं पुकार रहा हूँ । तुम कहाँ हो, कैसे हो, जो अपने गुरु देव दयानन्द की जय के लिए कुछ करते नहीं ।

अपने मन का अंधेरा उजाले में बदल दो, अपने घर आंगन में प्रकाश बिखरा दो। अपने आस पास प्रभु की ज्योति फैला दो। मेरे भाई ! मेरी बहन ! मेरी माँ ! मेरे बच्चे ! सुनो और मेरी बात सुनो ! रणभेरी बज रही है, देखो अवकाश न बनो, कांपो मत, डरो मत, आगे बढ़ो।

अपने जीवन की अंतिम सांस तक मैं तुम्हें पुकारता रहूँगा, तुम नाराज भले ही हो जाना, पर मैं तुम्हें सोने नहीं दूँगा। मेरे जीवन के अंतिम शब्द भी यही होंगे दयानन्द के वीर सैनिकों ! उठो विश्व विजय करो।

समय थोड़ा है और काम बहुत—दयानन्द का काम ईश्वर का काम है। प्रभु का काम है सच्चाई का प्रसार अज्ञान की समाप्ति। ज्ञान और अज्ञान का संघर्ष छिड़ा है। ज्ञान की विजय के लिए काम करो।

सोचो और बढ़ो, कुछ करो ऐसा कि मन्दिर-मस्जिद, गिरजाघरों पर 'ओ३म्' पताका लहराए। प्रत्येक मनुष्य का मन 'वेद' वीणा के स्वर गुंजाए। मनुष्य-मनुष्य बने, सारे भेद की दीवारें गिरा दी जाएं। एक नया सवेरा, आए जहाँ सब एक हों, सब के विचार आचार, काम एक हों। एकता की राह पर प्यार की हवा बहे और सच्चाई के मोती दामन में भरकर मुस्कराते हुए हम जीवन यात्रा पूरी कर सकें।

धरती को स्वर्ग बनाने के लिए आओ, काम करें।

शिवरात्रि के दिन व्रत लो कि—

- १=हम प्रतिदिन दानों समय संध्या करेंगे।
- २=कम से कम आधा घण्टा 'वेद' अवश्य पढ़ेंगे।
- ३=जन्मगत जातिवाद को नाम के साथ नहीं लगाएंगे।
- ४=विवाह या किसी भी समारोह में सादगी लाएंगे।
- ५=भूठ को जीवन का शत्रु समझेंगे।
- ६=पार्टी-बाजी, फूट, घृणा, द्वेष के विष से दूर रहकर अपनी शक्ति-भर सेवा दूसरों की करेंगे।
- ७=कम से कम १ सत्यार्थ प्रकाश और १ ऋषि जीवन नए व्यक्तियों को भेंट करेंगे।
- ८=अपनी आवश्यकताएं कम से कम रखेंगे।
- ९=जो उपदेश दूसरों को देते हैं उन पर स्वयं भी करेंगे।

और

अपनी पवित्र आय में से प्रतिमाह कम से कम ५) वेद-प्रचार के पवित्र यज्ञ में अवश्य भेजेंगे।

आप के यह १० व्रत राष्ट्र के कल्याण की आधार जिला बन सकते हैं।

राजधानी में विशाल वेद मन्दिर की आधार-शिला

आर्यसमाज की विचारधारा
भूमण्डल में फैलाने का ज्योति-स्तम्भ

नई दिल्ली, २ दिसम्बर को राजधानी की भीड़भाड़ से दूर एक विशाल वेद मन्दिर की आधार-शिला सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री ने एक सादे से समारोह में रखी ।



नींव खोदते हुए आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री

ऋषि दयानन्द के महान् कार्यों की पूर्ति के लिये राजधानी के ६००० वर्ग गज भूमि में बनाए जाने वाले इस केन्द्र में अभी चारों ओर वृक्ष लगा दिये गये हैं

और एक कमरे का निर्माण कर नल भी लगा दिया गया है ।

दयानन्द संस्थान के संचालक मंडल का विश्वास है कि इस वेद मन्दिर द्वारा शीघ्र ही भूमण्डल में वेद की ज्योति का प्रकाश फैलेगा और ऐसे प्रचारक तैयार किये जायेंगे जो ऋषि दयानन्द के सच्चे सैनिक बन कर नगर-नगर और डगर-डगर में वेद सन्देश गुंजाएंगे ।



बने हुए भवन का विहंगम दृश्य

वेद मन्दिर का अस्थायी द्वार भी बन गया है और २० × २० फुट की यज्ञशाला का चौतरा भी तैयार है । जहां शीघ्र ही प्रथम यज्ञ का आयोजन दयानन्द संसद् के प्रथम अधिवेशन पर किया जायेगा ।

धन के अभाव में भी प्रभु-विश्वास पर इस विशाल आयोजन का बीजारोपण कर दिया गया है । अभी संस्थान वेद भाष्य प्रकाशन के कारण इस कार्य को तेजी से चलाने की स्थिति में नहीं है । फिर भी यदि कोई उदारमना दानी महानुभाव सहयोग देंगे तो आश्रम-निर्माण में प्रगति हो सकेगी ।



नामपट्ट टांगते हुए आचार्य वैद्यनाथ जी

संप्रति आश्रम के लिये आवश्यक है—

- १—चार दीवारी : २ लाख ईंटें चाहियें । लागत १२५००)
- २—यज्ञशाला : लागत १०,०००)
- ३—वेद मन्दिर : चार मंजिल, प्रत्येक मंजिल की लागत १००००)
- ४—नल कूप : ५०००)
- ५—मुख्य द्वार : ५०००)

यज्ञशाला और मुख्य द्वार का नामकरण दानी के नाम पर हो सकेगा । व ५०००) की लागत से एक-एक कक्ष दानियों के नाम पर बन सकेगा ।

आश्रम में १—उपदेशक विद्यालय, २—प्रकाशन दिभाग, ३—शोध संस्थान, ४—अतिथि विभाग (जिसमें विद्वान्, संन्यासी, उपदेशक रह सकेंगे) । ५—गीशाला कक्ष, ६—भोजन कक्ष—बनाये जाएंगे ।

सभी कुछ प्रभु के भरोसे है—प्रभु कृपा से, उन्हीं की प्रेरणा से लक्ष्य पूरा होगा ।—मन्त्री

गायत्री मन्त्र पर प्रहार

[श्री शिवपूजनसिंह एम० ए०, साहित्यालंकार]

गायत्री मन्त्र भारत के धार्मिक जगत् में अपना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस मन्त्र के गौरव पर प्रहार कर 'सरिता' ने जो कुत्सित प्रयत्न किया है वह निन्दनीय है यहां प्रस्तुत है उसका सशक्त उत्तर।

वैदिक संस्कृति-विरोधिनी कुख्यात पत्रिका "सरिता" पाक्षिक रूप से दिल्ली प्रेस विल्डिङ्ग, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली में प्रकाशित होती है इसके सम्पादक व प्रकाशक श्री विश्वनाथ हैं। इस पत्रिका में प्रतिपक्ष किसी न किसी रूप में भारतीय संस्कृति के विरुद्ध विष वमन किया जाता है। कई बार इसमें प्रकाशित लेखों का उत्तर भेजा गया, परन्तु आज तक उन लेखों का प्रतिवाद प्रकाशित नहीं हुआ। 'सरिता' की नीति केवल आक्षेपात्मक है। इसके सितम्बर (प्रथम) १९७३ ई० अङ्क ४४२ "स्वतन्त्रता दिवस विशेषाङ्क" में श्री सुरेन्द्र कुमार शर्मा 'अज्ञात' का गायत्री मन्त्र शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है। इस लेख में महर्षि दयानन्द जी सरस्वती व उनके भाष्य पर भ्रमपूर्ण आक्षेप किया गया है। इसलिए इस लेख पर विचार करना अनिवार्य है। इस लेख का लेखक 'नास्तिक' [नास्तिको वेदनिन्दकः, मनुस्मृति २।२१] ज्ञात होता है। अन्यथा गुरु मन्त्र 'गायत्री' के विषय में इस प्रकार अनर्गल प्रलाप न करता।

पृष्ठ ७५—"गायत्री मन्त्र हिन्दुओं का नसों में खून के साथ ही हरकत करता है। यह मन्त्र ऋग्वेद (३।६२।१०) और यजुर्वेद (३६।३) में उपलब्ध है। इसका शास्त्रीय नाम 'सावित्री' है।

समीक्षा—गायत्री मन्त्र गुरु मन्त्र है। इसलिए हिन्दू आर्य तथा कतिपय विधर्मियों की नसों में रक्त के साथ हरकत करता है। आपने गायत्री मन्त्र के केवल दो पते दिये हैं। इसी से ज्ञात हो जाता है कि आपका ज्ञान अधूरा है। आपने "अल्पविद्या भयंकरी" "अधजल गगरी छलकत जाय" कहावतों को चरितार्थ किया है।

गायत्री मन्त्र ऋग्वेद मण्डल ३, सूक्त ६२ मन्त्र १०, यजुर्वेद ३।३५; २२।६; ३०।२, व ३६।३ तथा सामवेद मं० सं० १४६२ में है।

तैत्तिरीय संहिता में ३ बार; मैत्रायणी संहिता में दो बार; तैत्तिरीयारण्यक में दो बार; आंध्र आरण्यक में १ बार; मैत्रेय ब्राह्मण में चार बार; कौपीतकी ब्रा० में २ बार; गोपय ब्रा० में १ बार; दैवत ब्रा० में १ बार; शतपथ ब्रा० में ३ बार;

बृहदारण्यकोपनिषद् में १ बार; नारायणी उपनिषद् में १ बार, बाराह जैमिनीय और श्वेताश्वतर उपनिषदों में एक-एक बार; आश्वलायान श्रौतसूत्र में २ बार; आपस्तम्ब श्रौतसूत्र में १ बार, शांखा० श्रौ० सू० में ५ बार; शांखायन गृ० सू० में ३ बार, कौषीतकी गृ० सू० में १ बार, साममन्त्रब्राह्मण में १ बार, खादर गृ० सू० में १ बार, आपस्तम्ब गृ० सू० में २ बार, वौधायन धर्मशास्त्र में १ बार, मानव गृह्य सूत्र में ३ बार, मानव श्रौतसूत्र में १ बार, मानव धर्मशास्त्र में १ बार, मैत्रीय उपनिषद् में १ बार, तथा सूर्योपनिषद् में एक बार आता है।

पृष्ठ ७५—“वैसे तो यह मन्त्र गुरु से ही हिन्दुओं को परम प्रिय रहा है, परन्तु पिछली शताब्दी में इसका जोरदार प्रचार हुआ है। पहले यह स्वामी दयानन्द सरस्वती ने किया, बाद में लाखों की संख्या में विद्यमान उनके अनुयायियों—आर्य-समाजियों ने। आज भी आर्यसमाजी संन्यासी गायत्री मन्त्र पर सप्ताह भर तक व्याख्यान देते देखे जा सकते हैं, परन्तु उनके वक्तव्य का मन्त्र के साथ क्या सम्बन्ध है ?

समीक्षा—यह मन्त्र आर्यों हिन्दुओं को परम प्रिय रहा है, और भविष्य में भी रहेगा। आप जैसे लोगों के प्रभाव से इसका प्रचार बन्द नहीं हो सकता है। महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने अपना कोई नया मत नहीं चलाया, अपितु उनका मत ‘वैदिकमत’ है। हिन्दुओं में जो बुराइयाँ प्रवेश कर गई थीं, उनको उन्होंने दूर किया। गायत्री मन्त्र वेदमन्त्र है, इसलिए सभी आर्यसमाजी उसका प्रचार व जप करते हैं। गायत्री मन्त्र पर सप्ताह तो क्या महीनों तक वक्तव्य दिया जा सकता है। उसके वक्तव्य का मन्त्र के साथ क्या सम्बन्ध है, यह तो श्रोतागण ही समझ सकते हैं। आप भी आस्तिक बन कर श्रवण करें, तो समझ में आ जायेगा कि मन्त्र के साथ क्या सम्बन्ध है ? आपका आक्षेप संभवतः महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज की ओर है, क्योंकि वे ही दिल्ली में गायत्री पर सप्ताहों प्रवचन करते हैं।

गायत्री मन्त्र में बुद्धि (धी) की विभुता से विश्व के उद्भव की ओर जो सङ्केत मिलता है, तथा इसमें जो सरलता पाई जाती है, इसी से यह अति प्रसिद्धि को प्राप्त हो गया है। अथर्ववेद का० १६ सू० ७१, मन्त्र १ में द्विजों को पवित्र करने वाली वेदमाता (गायत्री) कही है। और स्तुति में कहा है—यह स्तुति करने वाले को लम्बी आयु, बल, प्रजा पशु, कीर्ति और वैदिक ज्ञान प्रदान कर ब्रह्मलोक [मोक्षपद] को पहुँचावे।

जब स्वयं वेद ही गायत्री मन्त्र की प्रशंसा करता है, तो वेदानुयायी महर्षि दयानन्द जी सरस्वती व आर्यसमाजी इसका प्रचार क्यों न करें ? आप कोई ऋषि-महर्षि तो हैं नहीं कि आपके कहने से इसका प्रचार बन्द कर दिया जाय।

पृष्ठ ७५—में आपने अपनी ‘प्रभाकर’ परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए गायत्री जप की मिथ्या गाथा दी है।

समीक्षा—केवल गायत्री जप करने से कोई परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर सकता है। परिश्रम करके पाठ स्मरण करना आवश्यक है। इतनी सी बात तो एक साधारण बुद्धि का व्यक्ति भी समझ सकता है। आपने पढ़ने में परिश्रम नहीं किया होगा, तब गायत्री का जप मात्र क्या करता ? अतः व्यर्थ का गल्प निखने का क्या तात्पर्य था ?

पृष्ठ ७६—मनुस्मृति अ० २, श्लो० ७६, ७८, ७९-८२, ८३ का अर्थ देकर आप आश्रय करते हैं—“इस स्तोत्र से स्पष्ट है कि गायत्री ऐसी क्लोरीन गैस है, ऐसा ब्लीचिंग पाउडर है कि इससे बड़े से बड़े पाप को भी खुरद बुरद किया जा सकता है। वायुयान, हेलीकोप्टर, राकेट आदि के बिना ही जहाँ दिल चाहे, वहाँ पहुँच जा सकता है।”

समीक्षा—मनुस्मृति के श्लोकों का अभिप्राय न समझकर आप उस पर कुतर्क करते हैं। मनु महाराज आपके जैसे कुतर्की व मूर्ख नहीं थे कि अपने विधान में लिख देते कि वायुयान यथवा हेलीकोप्टर के बिना मनुष्य उड़कर जा सकता है। जो श्रद्धा सहित प्रणव व्याहृति सहित गायत्री मन्त्र का जाप करेगा। तो उसकी सद्-गति होती है, न कि प्रकाश में उड़ने लगेगा। यह तो आपका कुतर्कमात्र है।

पृष्ठ ७७—(महर्षि दयानन्द जी सरस्वती की विद्वत्ता पर ओछा आक्रमण करते हुए लिखा है—) “इस मन्त्र में क्या है। ? इसका अर्थ क्या है ? यह सब जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है”। सबसे पहले हम वेदों के उत्कृष्ट प्रचारक स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा किया हुआ अर्थ उद्धृत करते हैं। उन्होंने वेदमन्त्रों को मोम की नोक समझकर सर्वत्र अपने अनुसार ठीक अर्थ करने का उपक्रम किया है।”

समीक्षा—वेद मन्त्र मोम की नाक नहीं है। महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के विद्वत्तापूर्ण वेदभाष्य को समझने के लिए बुद्धि चाहिये। कीचड़ उछालने वाले उनके भाष्यों को नहीं समझ सकते हैं। उनका भाष्य त्रिविवि प्रक्रियानुसार निरुक्त, निघण्टु व व्याकरणानुसार नितान्त सही है। उनके “ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका” ग्रंथ को पढ़कर देख लेते कि उनका भाष्य सही है, या मोम की नाक समझकर यत्र तत्र घुमाया है।

पृष्ठ ७७-७८—उनके द्वारा किया अर्थ—“हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग कर्म काण्ड की विद्या, उपासना की विद्या और ज्ञान काण्ड की विद्या को संग्रहपूर्वक पढ़के जो हमारी धारणावती बुद्धियों को प्रेरणा करे, उस कामना के योग्य समस्त ऐश्वर्य के देने वाले परमेश्वर के उस इन्द्रियों से न ग्रहण करने योग्य परोक्ष, सब दुःखों के नाशक तेजःस्वरूप का ध्यान करें वैसे तुम लोग भी इसका ध्यान करो।”
[यजुर्वेद भाष्य पृ० ११२०]

आक्षेप—स्वामी दयानन्द के अनुसार परमात्मा लोगों को उपदेश देता है कि “जैसे मैं दुःखों के नाशक परमेश्वर का ध्यान करता हूँ। वैसे तुम भी करो।” कैसा परमात्मा है, जिसे स्वयमपि किसी दुःखनाशक का ध्यान करना पड़ता है। इस अर्थ को पढ़कर पता चलता है कि यह परमात्मा अपना उदाहरण देकर मनुष्यों को उपदेश देता है कि तुम भी उसी का ध्यान करो, जिसका मैं धरता हूँ। पता नहीं इस मन्त्र की हजार बार या लाख बार की गई आवृत्ति से कैसे वह कुछ हो जाएगा, जो गायत्री माहात्म्य में लिखा है ?”

समीक्षा—जो झूठ लिखना और लोगों को भ्रमाना ही अपना लक्ष्य बना चुके हैं, वे जो भी लिखें वा कहें, स्वल्प है। लेखक ने ऋषि दयानन्द के नाम से जो गायत्री का अर्थ लिखा है, वह अर्थ है ही नहीं, वह तो भावार्थ मात्र है। अर्थ तो उसके

ऊपर लिखा है, उसे लेखक ने जानबूझ कर उद्धृत नहीं किया। यदि उसे उद्धृत कर देते, तो फिर भ्रम कैसे फैला सकते थे ?

और यदि उनके 'भावार्थ' को भी समझने का प्रयत्न करते, तो जो ऊटपटांग लिखा है, वह न लिखते। मन्त्र का पूरा भावार्थ इस प्रकार है—

यजु० ३६।३ का भावार्थ—“अत्र वाचकलु० । ये मनुष्याः कर्मोपासनाज्ञानविद्याः संगृह्याखिलैश्वर्ययुक्तेन सह स्वात्मनो युञ्जते-
धर्मोऽनैश्वर्यदुःखानि विधूय धर्मैश्वर्य सुखानि प्राप्नुवन्ति, तानन्तर्यामी
जगदीश्वरः स्वयं धर्मानुष्ठानमधर्मत्यागं च कारयितुं सदैवेच्छति ।”

“इस मन्त्र में वाचकलु० । जो मनुष्य कर्म, उपासना और ज्ञान सम्बन्धिनी विद्याओं को सम्यक् ग्रहण कर सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त परमात्मा के साथ अपने आत्मा को युक्त करते हैं, तथा अधर्म अनैश्वर्य और दुःख रूप मलों को छुड़ा के धर्म, ऐश्वर्य और सुखों को प्राप्त होते हैं उनको अन्तर्यामी आप ही धर्म के अनुष्ठान और अधर्म का त्याग करने को सदैव चाहता है ।”

इस भावार्थ को सभी समझ सकते हैं। आप का आक्षेप निर्मूल हो जाता है। आप वेद के 'वाचकलुप्तोपमालङ्कार' को क्या समझें ? यदि समझने की बुद्धि होती तो ऐसा अनर्गल प्रलाप कभी न करते।

पृष्ठ - ०—जिस मन्त्र की दुम पकड़ रखी है, वह वास्तव में शुद्ध गायत्री छन्द में भी नहीं है। गायत्री छन्द का लक्षण है, तीन पदों वाला वह छन्द जिसके प्रत्येक पाद में आठ आठ अक्षर हों, और इस प्रकार कुल २४ अक्षर हों, १०० हमारा आलोच्य मन्त्र ऋग्वेद (३।६२।१०) में इस प्रकार आता है “तत्सवितुर्वरेण्यम् (७) भर्गो देवस्य धीमहि (८) धियो यो नः प्रचोदयात् (८) इसके अन्तिम दो पदों में तो आठ वर्ण हैं, परन्तु प्रथम पाद में एक वर्ण कम है। अतः इसे शुद्ध गायत्री नहीं कह सकते, यह लंगड़ा छन्द है।

यजुर्वेद (३६।३) में यह मन्त्र इस प्रकार है—भूर्भुवः स्वः तत्सवि-
तुर्वरेण्यम् [११] भर्गो देवस्य धीमहि [८] धियो यो नः प्रचोदयात्
(८)। इस मन्त्र में भी दो अन्तिम पाद पहले लिखे ऋग्वेद मन्त्र की तरह ठीक हैं, परन्तु पहले पाद में उलटी गंगा बह रही है। उसमें एक वर्ण कम था, तो उसमें तीन वर्ण फालतू हैं, शुद्ध हो नहीं सकता ! आखिर परमात्मा द्वारा प्रदत्त वेद जो हुए !

समीक्षा बलिहारी है लेखक की बुद्धि की। उसने यदि वैदिक छन्दःशास्त्र पढ़ा होता, तो उसे ज्ञान होता कि गायत्री छन्द एक प्रकार का ही नहीं है। उसके भेद प्रभेद मिलाकर लगभग ५० तरह का है। उसमें एक भेद है—निचृद् गायत्री। निचृद् में २३ ही अक्षर होते हैं। अतः यह छन्द लंगड़ा नहीं, लेखक की बुद्धि लंगड़ी है, जो गायत्री के प्रभेदों को नहीं जानती। यहाँ यजुः ३६।३ का मन्त्र उसका व्याहृति भाग का देवी बृहती और शेष का निचृद् गायत्री छन्द है। यदि वेद की पुस्तक देखी होती, उसमें लिखे छन्दों पर गौर किया होता, तो लेखक ऐसी मूर्खता न करता। पर लेखक को इसमें क्या मतलब ? उसे तो घटं भित्त्वा पटं छित्त्वा पुरुषःप्रसिद्धो भवेत् उक्ति के अनुसार यदि मिथ्या प्रलाप से ही उसे प्रसिद्धि मिलती है, तो उसके लिए यही पर्याप्त है।

आक्षेप व्यर्थ है ।
गुरु मन्त्र को 'गायत्री मन्त्र' गायत्री छन्द के कारण नहीं कहा जाता, क्योंकि गायत्री छन्द के तो वेदों में शतशः मन्त्र हैं । वे गायत्री मन्त्र नहीं कहाते, 'गायत्री छन्दस्क' मन्त्र कहाते हैं । प्रस्तुत मन्त्र को 'गायत्री' कहने का तात्पर्य शास्त्रकारों ने 'गायन्तं त्रायते या ऋचा सा गायत्री' शब्दों से प्रकट किया है ।

गायत्री शब्द की सिद्धि व्याकरण पद्धति से—

[क] 'गायन्तं त्रायते' विग्रह करके, 'गायत्' उपपद के साथ 'त्रैङ् पालने' इस पालनार्थक भ्वादिगणी घातु से 'क' प्रत्यय होने पर, 'त्रै' के अन्तिम स्वर 'ऐ' को आकार हो कर लोप हो जाता है, तथा 'क' प्रत्यय के आदि अक्षर 'क्' का भी लोप हो जाना है। इस प्रकार 'गायत् + त्र' शब्द बनता है। इसका स्त्रीलिंग, 'गायत्री-लोप' हो जाना है। इस प्रकार 'गायत् + त्र' शब्द बनता है। इसका स्त्रीलिंग, 'गायत्री-लोप' हो जाना है। इस प्रकार 'गायत् + त्र' शब्द बनता है। इसका स्त्रीलिंग, 'गायत्री-लोप' हो जाना है।

गायत्री मन्त्रस्थ पदों की व्याख्या—

अर्थात् जिससे परब्रह्म की स्तुति की जाती है ।

तत्—परोक्षभूतं सवितुः सर्वजगदुत्पादकस्य यत् स्वरूपं तत्—सर्व जगत्
के उत्पादक का परोक्ष—आँखों से दिखाई न देने वाला स्वरूप ।

सावितुः—सर्वस्य जगतः प्रसवितुः । “सविता वै देवानां प्रसविता, तयो हास्मा
 ऐते सवितृप्रभूता एव सर्वे कामाः समृध्यन्ते [सतपथ ब्रा० २।१।१ ३६]—सब
 जगत् के उत्पन्न करनेवाला परमात्मा ।

वरेण्यम्—अतिश्रेष्ठम्—अतिश्रेष्ठ ।

अत्र वृत्र एण्यः । उ० ३।६६ अनेन वृम् वातोरेण्यप्रत्ययः ।

अत्र वृत्र एण्यः । अ० ६।१६६ अनन्यं वृत्रं प्रातरेण्यम् ।
 'एण्यन्' इति तु श्वेतवनवासी, अयमेव च सम्प्रक् । तेन जिनित्यादिनित्यम्
 [अ० ६।१।१६७] इत्याद्युदात्तः । पश्चान्तरे छान्दसस्वरं व्यत्यय इत्येव स्यात् ।
 निम्नोक्तं च यथापत्तिरिति चेत् तत्र पापद्वयद्वयोः के मूल को

[अ० ६।१।१६७] इत्याद्युदात्तः । पञ्चान्तर छान्दोग्यस्वरूपः ।
 भर्गः—भृजन्ति पापानि दुःखमूलानि येन तत्—पापहृत् दुःखों के मूल को
 नष्ट करने वाला तजः स्वरूप है ।

नष्ट करने वाला तमः स्वल्प है ।
 “अञ्चयञ्जिन्नुजि० उ० ४।२१६। इति भस्मवातोऽनुन् प्रत्ययः, कवगदिशश्च
 नित्वादाद्युदात्तः ।

देवस्थ—द्योतनार्थकात् प्रकाशनार्थकाद् वा दिवु घातोश्च प्रत्ययः ।
प्रकाशमयस्य शुद्धस्य सर्वसुखप्रदानुः परमेश्वरस्य । प्रकाशमय शुद्ध या सुख देनेवाले
परमेश्वर का जो ।

परमेश्वर का जो ।
धीमहि—दधीमहि—धारण करें । अत्र डुधान् घातोः प्रार्थनायां लिङ्
छन्दस्युभयया [अ० ३।४।११७] इत्यार्षधातुकत्वाच्छब् न, आतो लोप इटि च
[अ० ६।४।३४] इत्याकार लोपश्च ।

फाल्गुन संवत् २०३०

धियः—प्रज्ञाः बुद्धीः—बुद्धियों को उत्तम उत्तम गुणकर्मस्वभावों में ।
 “धीरिति प्रज्ञानामसु पठितम् [निघण्टु ३।६] “ध्यायतेः सम्प्रसारणं च (अ० ३।२।
 १७८ वा०) इति क्विपि घातुस्वरेण्युदात्तत्वम् ।”

यः—ध्यानेन बुद्ध्यावुपस्थापितः प्रत्यक्षः सविता देवः परमेश्वरः—जो अन्तर्यामी,
 सब सुखों का देने वाला है, वह अपनी करुणा करके ।

नः—अस्माकम्—हम लोगों को ।

प्रचोदयात्—“तिङ् इतिङ्” (अ० ८।१।२८) इति निघाते प्राप्ते यद्वृत्ता-
 न्तित्यम् (अ० ८।१।६६) निघातप्रतिषेवे णिजन्तस्य सनाद्यन्ता घातवः (अ०
 ३।१।३२) इति घातुत्वे लेटि शय्याडागमे गुणे च घातुस्वरेण दकार उदात्तः—
 प्रेरणा करे ।

भला जिस ऋचा या मन्त्र के पदों का ऐसा उत्कृष्ट अर्थ हो, जिसमें बुद्धि
 को सन्मार्ग में लगाने की प्रभु से प्रार्थना की गई हो, उस पर मिथ्या अज्ञानपूर्ण लेख
 द्वारा कीचड़ उछालना कहां तक उचित है, यह प्रत्येक बुद्धिमान् जान सकता है ।

अब रही गायत्री मन्त्र से लौकिक लाभ की बात । इसके सम्बन्ध में यह
 जानना आवश्यक है कि गायत्री मन्त्र का जाप बुद्धि की शुद्धता के लिए ही करना
 चाहिये । परन्तु जिन लोगों ने लौकिक फल के लिए भी गायत्री का जाप किया, उन्हें
 इसके जप से भौतिक लाभ भी हुए हैं । इस पर विश्वास कर के लाभ पानेवालों का
 संग्रह पं० श्री राम शर्मा आचार्य ने “गायत्री के प्रत्यक्ष चमत्कार” पुस्तक में दिया
 है फिर भी यह जानना चाहिये कि भौतिक लाभ के लिए गायत्री का जप न करके
 बुद्धि की शुद्धता के लिए ही करना उचित है ।

अब हम प्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक विद्वान् भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० सर एस०
 रावाकृष्णन् का मन्तव्य उपस्थित करते हैं—

The Gayatri, a prayer for renewal of our own lines . If we
 take up the universal prayer, the Gayatri, we find that it gives
 something real. The ‘Gayatri’ is a prayer for passionate renewal of
 our own lives, it is a search, it is quest and an adventure. There is
 no finality so far as religious life and quest are concerned...”

• अर्थात्—“हम फिर से जीवनदान देनेवाली प्रार्थना—यदि हम इस सार्व-
 भौतिक प्रार्थना ‘गायत्री’ पर विचार करें, तो हमें पता चलेगा कि इससे हमें सचमुच
 कुछ लाभ होता है । ‘गायत्री’ हमारे अंतर्गत पुनः जीवन का स्रोत उत्पन्न करने के
 लिए सच्ची आकुल प्रार्थना है । यह एक खोज है । यह एक साहसिक अनुसंधान है ।
 जहाँ तक धार्मिक जीवन या खोज का सम्बन्ध है, ‘इति’ नाम से कोई रेखा नहीं
 खींची जा सकती—इसका कोई अन्त नहीं...।”

रही गायत्री को गुरुमन्त्र कहने की बात । सो यह कनफुकवे गुरुओं के निर-
 र्थक मन्त्रों के समान नहीं है । आचार्य जब ब्रह्मचारी का उपनयन करता है तब वह
 इसी मन्त्र का उपदेश करता है । इस उपदेश के द्वारा वह ब्रह्मचारी को कहता है
 कि विद्याव्ययन के लिए बुद्धि की एकाग्रता और पवित्रता आवश्यक है । अतः हे
 शिष्य ! तू इस मन्त्र के द्वारा सर्वजगदुत्पादक परब्रह्म से अपनी बुद्धि की निर्मलता

के लिए प्रार्थना कर। जो कि गुरु के द्वारा सर्वप्रथम इसी मन्त्र का उपदेश होता है, अतः इसे गुरुमन्त्र कहते हैं।

लेखक ने लिखा है कि इस मन्त्र का शास्त्रीय नाम 'सावित्री' है, यह भी लेखक का अज्ञान है। इस ऋचा को सविता (—मन्त्र वाच्य अर्थ) होने से इसे, 'सावित्री' कहते हैं। सविता देवता की वेद में जितनी भी ऋचाएँ हैं चाहे वे किसी भी छन्दावली में हों, सभी सावित्री कहाती हैं। अतः इसका ही 'सावित्री' नाम बताना मूर्खतामात्र है।

इस लेख से यह स्पष्ट हो जायेगा कि सरिता में छपा उक्त लेख न केवल मूर्खतापूर्ण है, अपितु शरारतपूर्ण भी है। इस प्रकार के घृणित लेखों से कुछ एक निर्वुद्धि बहक सकते हैं, बुद्धिमान् नहीं।

दिल्ली जाकर भूल गया

दो साल पूर्व सोवियत संघ की यात्रा पर गया था, तो बहुत-सी अनुभूतियों के साथ वापस आया। उनमें सबसे अधिक झकझोर देने वाली अनुभूति यह थी।

मास्को हवाई अड्डे पर उतरने के बाद शहर की ओर जाते हुए रास्ते में जब क्रेमलिन आया, तो मैंने अपने साथ के रूसी मार्गदर्शक से अंग्रेजी में पूछा— 'यह क्या है ?'

'यही सुप्रसिद्ध क्रेमलिन है, उन्होंने हिन्दी में उत्तर देकर मुझे विस्मय में डाल दिया।

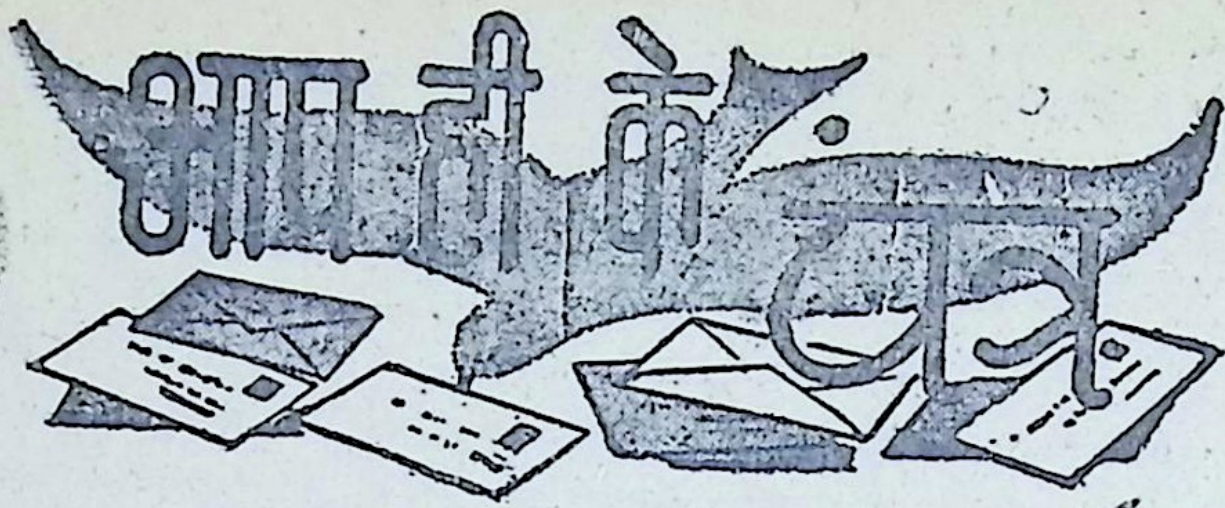
'आप क्या हिन्दी जानते हैं ?' मैंने सुखद आश्चर्य के साथ पूछा।

'जानता था, लेकिन दिल्ली में जाकर भूल गया'। उन्होंने बड़े सहज ढंग से उत्तर दिया। पर मुझे लगा, जैसे मेरे गालों पर किसी ने अनगिनत तमाचे जड़ दिये हैं।

उत्तर देने वाले रूस-भारत मैत्री संघ के मंत्री श्री जिजिन थे, जो बहुत वर्षों तक सोवियत दूतावास में दिल्ली रह चुके थे। उनका कहना था कि बहुत परिश्रम करके जब कोई विदेशी हिन्दी सीखकर दिल्ली पहुँचता है, तो उसे इस बात से दुःख होता है कि वहाँ कोई हिन्दी बोलने के लिए तैयार नहीं होता, सभी अंग्रेजी में ही बातें करते हैं। अतः कोई स्वदेश से हिन्दी सीखकर भी जाये, पर दिल्ली में जाकर उसे भूल जाता है।

क्या इस बात से हमारे देश के लोग कुछ भी प्रेरणा ले सकेंगे।

—शंकर दयाल सिंह



प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् श्री काशीनाथ शास्त्री का पत्र

[आदरणीय भाई जी, सादर नमस्ते !

काफी समय पश्चात् आप को पत्र लिख रहा हूँ। पत्र लिखने का कारण यह है कि दिनांक २८ अक्टूबर १९७३ के 'सार्वदेशिक' में आपके लेख के उत्तर में जो कुछ प्रकाशित हुआ है वह मुझे योग्य नहीं जँचा। सभा ने जो घमकी दी है उसका भी कोई औचित्य नहीं ज्ञात होता। न्यायतः जो ठीक नहीं दीखता उसका खण्डन करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ और इसीलिये मैं सार्वदेशिक के लेख को अनुचित समझता हूँ। इसी आशय का पत्र मैंने श्री मन्त्री जी, सार्वदेशिक सभा को भी लिख भेजा है। सितम्बर सन् १९७३ को 'सरिता' में 'गायत्री मन्त्र' शीर्षक से जो लेख प्रकाशित हुआ है वह ईश्वर, वेद, स्वामी दयानन्द, आर्य समाज और आर्य विद्वानों की प्रतिष्ठा को खुली क्षति पहुँचाता है। उसके विरुद्ध कार्यवाही करने की सार्वदेशिक ने कोई आवश्यकता नहीं समझी। केवल आपस वालों की ही टोपी उछालना योग्य नहीं है। मैंने 'सरिता' के लेख का मुँह तोड़ उत्तर 'सार्वदेशिक' में प्रकाशित करने के लिये भेजा था किन्तु उसे भी अभी तक प्रकाशित नहीं किया और शायद करेंगे भी नहीं।

आप द्वारा प्रेषित 'जन-ज्ञान' के अंक प्राप्त हुए, तदर्थ अनेकशः धन्यवाद। मैंने अंक पढ़ने से पूर्व ही यह समझ लिया था कि विचार-स्वतंत्रता के जन्म सिद्ध अधिकार के नाते ही आपने मारीशस सम्मेलन के सम्बन्ध में अपने कुछ विचार प्रकट किये होंगे जिसका अधिकार कम से कम प्रत्येक आर्यसमाजी और ऋषि दयानन्द के भक्त को है। पुनः मेरा यह विश्वास था कि किसी से चाहे कितना मत-भेद क्यों न हो आप किसी के प्रति अभद्र या प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचाने वाले शब्द व्यवहार में कदापि नहीं ला सकते।

'जन-ज्ञान' के अक्टूबर-नवम्बर के अंकों में पढ़कर मेरा अनुमान व विश्वास पूर्ण सत्य सिद्ध हुआ। आपके लेखों में कोई ऐसी बात नहीं है जो आर्य जगत् या सार्वदेशिक सभा की प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचाने वाली हो। आप ने तो केवल मारीशस सम्मेलन के सम्बन्ध में अपने कुछ विचार प्रकट करते हुए कुछ प्रश्नों का स्पष्टीकरण चाहा था। यदि उन्हीं बातों को मैं लिखता तो सम्भवतः आप से कहीं अधिक विरोधात्मक व अप्रिय भाषा में लिखता।

मैंने जो लेख 'सरिता' के (गायत्री मन्त्र से सम्बन्धित) लेख के उत्तर में सार्वदेशिक को भेजा था उसके बारे में लिखा है कि "लेख के बारे में जांच करके योग्य कार्य करूंगा।"

मैं लगभग तीन वर्षों से अनुभव कर रहा हूँ कि सार्वदेशिक सभा में एक महानुभाव ऐसे हैं जो जन्मगत जातिवाद के पुछल्ले को अपने नाम के साथ साभिमान लगाने के साथ-साथ अपनी ही प्रतिष्ठा और वर्चस्व चाहते हैं।
गोंदिया (महाराष्ट्र)

काशीनाथ शास्त्री

श्रीयुत प्रिय भाई भारतेन्द्रनाथ जी,

सप्रेम नमस्ते !

आपका कृपा कार्ड २५४ जावक सं० ता० द. ११. ७३ का मिला। समाचार जाने। तदर्थ बहुत-बहुत धन्यवाद। वेद हमारे पास तीनों ग्राहकों के आ गये हैं। उन्हें दे भी दिये हैं, जिसने देखा प्रयत्नता प्रकट की। इस सम्बन्ध में मेरा यह वक्तव्य है कि समस्त आर्य जगत् के विद्वानों में ऋषि दयानन्द जी को सच्ची श्रद्धाञ्जलि जो उनकी हार्दिक इच्छा के अनुकूल है, :-४ व्यक्तियों ने ही दी है। उनकी वसोयत थी वेद का सर्वत्र प्रचार। खेद है कि आर्यसमाज व ऋषि की परोपकारिणी सभा भी १०० वर्ष में हिन्दी भाष्य सहित चारों वेद जनता को न दे सकी। इसका श्रेय स्वर्गीय पं० तुलसी राम जी मेरठ वालों ने सामवेद भाष्य करके तथा स्व० पं० जयदेव जी शर्मा विद्यालंकार अजमेर ने चारों वेदों का हिन्दी भाष्य करके तथा स्वर्गीय श्रीमान् दामोदर सातवलेकर जी ने अथर्व वेद का व्याख्यान पूर्वक भाष्य करके एवं ऋग्वेद और यजुर्वेद के कुछ स्थलों का भाष्य करके व्याख्या सहित हिन्दी संसार की दिया। उन्होंने इतना श्लाघनीय प्रयत्न किया है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। उक्त सब महानुभावों के बाद आपने चारों वेदों का इतना सुन्दर और आकर्षक प्रकाशन करके महान् कार्य किया है। आने वाले समय में आपका स्थान वेदों के प्रकाशन में सबसे ऊपर श्लाघनीय, अनुकरणीय कहा जायेगा। महर्षि की आत्मा आपको हृदय से आशीर्वाद दे रही होगी, मेरे जैसे अनेकों आपको बधाई दे रहे होंगे।

चन्द्र बावड़ी, अजमेर

भवदीय—

रामचन्द्र आर्य मुसाफिर

आदरणीय भाई भारतेन्द्रनाथ जी,

करबद्ध सादर सप्रेम नमस्ते,

जनज्ञान के तीन अंक आज तक प्राप्त हुए। वस्तुतः आपका कार्य अत्यन्त ही प्रशंसनीय है। आशा है आप अनवरत आगे ही बढ़ते जायेंगे। "चरैवेति-चरैवेति"

आप लौकिक से अलौकिक की ओर बढ़ें। संसार आपकी ओर प्रकाशस्तम्भ के सदृश देखे। वेद मन्त्र के द्वारा आपके भावी जीवन की शुभकामनाएं प्रकट करता हूँ।

फाल्गुन संवत् २०३०

२५

“सत्रस्य ऋद्धिरसि — आगमज्योतिरमृताभूम”

बघरा (मुजफ्फरनगर)

रामेश्वर शास्त्री

एम० ए० (संस्कृत हिन्दी) साहित्याचार्य

विद्याभास्कर, साहित्य रत्न

आदरणीय दीदी, सादर नमस्ते !

मैं जन-ज्ञान की सदस्या हूँ और मैं हृदय से चाहती हूँ कि मैं सक्रिय होकर महर्षि दयानन्द के उद्देश्य की पूर्ति में सहायक बन सकूँ। पिछले दो सालों से मेरी यह इच्छा रहती है कि अधिक से अधिक लोगों के अंदर साहित्य पढ़ने की इच्छा उत्पन्न कर सकूँ। यथाशक्ति करती हूँ, लेकिन यह कार्य जब बड़े पैमाने पर हो तभी लाभ हो सकता है। आदरणीय दीदी, उमंग तो बहुत है; इसी उद्देश्य से संस्कृत व्याकरण भी पढ़ रही हूँ। आप से प्रार्थना है कि जब आप कानपुर आयें तो हमारे यहाँ अवश्य ही आयें शायद जीवन में दूसरों को उपयोगी बनने की प्रेरणा मिले।

आप जन-ज्ञान को पढ़कर भी बहुत प्रेरणा मिलती है। भगवान् से प्रार्थना करती हूँ कि मैं भी आपकी ही भांति कोई निश्चित सक्रिय दिशा चुन सकूँ। दीदी, प्रयत्न तो कर रही हूँ। आगे प्रभु की इच्छा है।

कानपुर

आपकी छोटी बहन

सरला चौधरी

वृक्षों में जीवन है

जन-ज्ञान मासिक (हिन्दी) नवम्बर अंक में श्री डा० सत्यवीर ने अपने विचार दिये हैं और यह साबित किया है कि वृक्षों में जीवन है अर्थात् आत्मा है। इसके लिये मैं एक प्रमाण यहाँ देता हूँ।

अमेरिका (U. S. A.) में एक लूथर बरबैंक नाम के सन्त हुए हैं जिन्होंने वनस्पतियों पर बहुत अनुसंधान किया है और कई बढ़िया किस्म की वनस्पतियों पेश की है। उसका नाम इतना मशहूर हो गया है कि यह शब्द Webster's New International Dictionary में भी आ गया है और "Burbank" शब्द का अर्थ है। "To cross or graft (a plant), Hence figuratively to improve (anything, as a process or institution) by selecting good features and rejecting bad, by adding good features."

श्री बरबैंक का कहना है कि "The search of improved plant breeding; apart from scientific knowledge, is love." श्री परमहंस योगानन्द जिन्होंने U. S. A. में ३० वर्ष ध्यान योग का प्रचार किया श्री बरबैंक से मिले और उन्हें अपनी autobiography, Chapter 38. page 360, American edition of 1959, पर ऊपर के शब्द लिखे हैं और फिर जो कुछ लिखा है वह मैं नीचे दे रहा हूँ :—

Luther Burbank uttered this wisdom (the words already

copied above) as I (Parmahansa Yoganand) walked beside him in his garden in Savita Rosa, California. We halted near a bed of edible cacti.

While I was conducting experiments to make "Spineten" cacti, he continued, I often talked to the plants to create a vibration of love. "You have nothing to fear," I would tell them. "You don't need your defensive thorns. I will protect you." Gradually the useful plant of the desert emerged in a thornless variety.

"I was charmed at this miracle"

वृक्षों में आत्मा है तभी तो श्री वरवैंक के प्रेम के सन्देश को कैकटाई पीघे ने सुना और उसकी बात को मान लिया और कांटों का ओढ़न अपने ऊपर से हटा दिया।
करोलबाग, नई दिल्ली-५

भागमल्ल मेहता

महाशय,

सादर नमस्ते !

तामिलनाडु में "आर्य-द्रविड़," और, ब्राह्मण-अब्राह्मण, उत्तर-दक्षिण, आस्तिक-नास्तिक हिन्दी-तमिल, संस्कृत-तमिल आदि नाम व विचार भिन्नताओं को लेकर जो कलह होते रहे, इन सबका प्रत्यक्ष फल था कि मद्रास शहर में जो कुछ आर्य समाज हैं वे बलहीन हो गये। मैं आर्य समाज में १९७० में आया, और आपके जन-ज्ञान की एक पुरानी प्रति पढ़ने से प्रभावित होकर आपके महान् मासिक का चन्दा-दार बना। आपके और मासिक के सन्देशों से बहुत उत्तेजित होकर, आर्यसमाज की ओर से मद्रास के कुछ भागों में ऋषि दयानन्द के उपदेशों को पहुँचाने का प्रयत्न भी किया। आज भी कर रहा हूँ।

यहां के लोग राजनैतिक और सामूहिक कारणों से समाज में आने से हिच-किचाते हैं। और मद्रास आर्यसमाज भी, काफी तमिल और अंग्रेजी जाननेवाले प्रचारक न होने के कारण, फीका पड़ गया है।

यहां के आर्य समाज में हम जैसे कार्य करने वालों को स्थान नहीं है—यह बात समझ कर मेरे एक मित्र आज कल समाज से दूर खड़े रहते हैं। मैं उनको समझा-बुझाकर फिर उन्हें दयानन्द के कार्य क्षेत्र में लाने के लिए कोशिश कर रहा हूँ। आजकल हम चार मित्र मिलकर तमिल जनता के बीच महर्षि दयानन्द के सन्देश पहुँचाने के लिए,

"महर्षि दयानन्द वैदिक हिन्दू धर्म सभा"

"Maharashi Dayananda Vedic Hindu Mission"

"महामुनिवर दयानन्द वैदिक इन्दु तिरुच्चवै"

स्थापना करके समाज प्रचार के उद्यम में मग्न रहते हैं। इसे एक रजिस्ट्री-कृत सभा बनने का भी उद्देश्य है।

हम में दो आपके सदस्य हैं, तीसरा आपका अंग्रेजी जन-ज्ञान के चन्दा लाइब्रेरी के लिए देनेवाला है। चौथा एक हरिजन सज्जन है।

फाल्गुन संवत् २०३०

२७

जो विज्ञापन हम तमिल भाषियों में तमिल में प्रचारित कर रहे हैं उसका एक rough अनुवाद इस पत्र के साथ है।

यह आपकी जानकारी और आशीर्वाद के लिए मैं भेज रहा हूँ। ईश्वर आपके वेद प्रचार उद्यम में सब सफलता देंगे।

एक प्रार्थना

प्रिय मित्रो,

नमस्ते हम पिछले कुछ वर्षों से मद्रास आर्य समाज के सदस्य हैं। कुछ ऐतिहासिक कारणों से आर्य समाज की प्रगतिशील विचार धाराएं हमारे लोगो के बीच नहीं फैल सकीं। एक संस्था के रूप में समाज अपनी शक्ति के अनुसार कार्य कर रही है। फिर भी वह असफल है क्योंकि उसके लिए निम्न तौर पर (basic) स्थापन, या, संघ, या सभाएं आदि नहीं हैं। यह विचारा लाकर हम इसे मिटाने के कुछ प्रयत्न करने में और एक सभा या प्रचार संघ की स्थापना के उपलक्ष्य में रहते हैं।

इसका पहला कदम है हमारी सभा :—

“महर्षि दयानन्द वैदिक हिन्दू धर्म सभा”

“Maharsi Dayananda Vedic Hindu Mission”

“महामुनिवर दयानन्द वैदिक इन्दु तिरुच्चवै”

इस संस्था का प्रथम और पूर्ण लक्ष्य है—हिन्दुओं में वेद और उसके तत्त्वों का प्रचार करना; उन्हें जाति, मत, भाषा रहित एक समूह बनने से आकर्षित होकर, अन्य मतावलम्बी और विदेशी लोग भी अपने आप उनसे मिलजुल कर रहने की इच्छा से आए—इस तरह की, एक भ्रातृत्व और मनुष्यता पूर्ण समूह हम हिन्दू बनें; और सिर्फ होठों से वेदान्त बोलकर, सारहीन वेदान्त बोलकर डूब जाने वाले हम हिन्दुओं को सच्चा वेदज्ञान देना भी है।

इस धर्म सभा में सिर्फ हिन्दू नहीं, सब अन्य लोग भी जो महर्षि दयानन्द के मन्तव्य को सम्पूर्ण हृदय के साथ मानते हैं, सदस्य बन सकते हैं।

एक सौ सदस्य भर्ती होने के बाद, एक समारोह में इस धर्म सभा का नाम उद्देश्य आदि सम्मति के लिए रखा जायेगा। सभा से अंगीकृत विधियों को मिलाकर नियम पूर्वक रजिस्ट्री करके जनतन्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार यह धर्म सभा कार्य करेगी।

प्रारंभ काल के खर्च के लिए धन की आवश्यकता है। जो कुछ आपसे हो सकता, देकर पुण्य कमाने की कृपा करें। सज्जन लोग आपके घर के पता भी कृपा करके नोट कर दीजिए।

धर्म सभा के कार्यालय का तत्काल पता है :

के वैलायुधम् ६ फर्स्ट स्ट्रीट, (मन्नार मुदली स्ट्रीट) वडपलनि नगर,
मद्रास-२६ (६०००२६) (तमिलनाडु)

जन-ज्ञान (मासिक)

उर्दू का पक्ष लेने वाले देश द्रोही हैं

मेरे सम्मुख आगरा से प्रकाशित होने वाले दैनिक पत्र 'अमर ज्वाला' का मिति आग्रहायण कृष्णा २, संवत् २०३० तदनुसार सोमवार, १२ नवम्बर १९७३ का अंक रक्खा हुआ है। पहले ही पृष्ठ पर इसमें एक समाचार प्रकाशित हुआ है—

'उर्दू के दुश्मन देश के दुश्मन'

समाचार यह है कि लखनऊ में ११ नवम्बर को अखिल भारतीय गैर-मुस्लिम उर्दू लेखक सम्मेलन का दूसरा दिन था। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए श्री कृष्ण चन्दर ने यह कहा कि उर्दू का दुश्मन देश का दुश्मन है। श्री रघुपति सहाय 'फिराक' गोरखपुरी ने कहा कि उर्दू शिक्षा के भोंड़ेपन से बचाती है। श्रीयुत 'फिराक' के विचार हैं कि हिन्दी पढ़ने से उनके बच्चे 'जाहिल और निकम्मे' बन जाएंगे। फिराक साहब का हिन्दी-द्वेष सब जानते हैं। उनकी दृष्टि में "हिन्दी कोई ऐसी भाषा नहीं है, जिसका अध्ययन किया जाय। हिन्दी में साहित्य नाम का चीज तो कोई है ही नहीं।"

सत्य तो यह है कि भारत में 'जयचन्दों' की एक परम्परा रही है। उत्कट देशभक्ति के साथ साथ देश के प्रति विश्वासघात की कहानियों से यहाँ का इतिहास भरा हुआ है। सत्तालोलुप स्वार्थी नेता चन्द वोटों के लिए अल्पसंख्यकों के सन्तुष्टीकरण में देश के हित का रत्तीभर भी ध्यान नहीं रखते हैं यह क्या किसी जागृत पाठक की दृष्टि से छिपा हुआ है? 'जयचन्दों' की उसी परम्परा में स ये लेखक हैं— श्री कृष्ण चंदर, फिराक गोरखपुरी आदि।

मैं इन लेखकों को यह स्पष्ट बता देना चाहता हूँ कि उर्दू इस देश की भाषा नहीं है। दूसरी बात यह है कि उर्दू मुसलमानों की भाषा है। उर्दू मुसलमानों की भाषा है, यह सिद्ध करने लिए मैं तर्क दे रहा हूँ—

- १—मुसलमानों का सम्प्रदाय-ग्रन्थ 'कुरान' अरबी भाषा में है। अरबी भाषा भारतीय भाषा नहीं है।
- २—उर्दू की लिपि फारसी लिपि है। इसलिए यह लिपि विदेशी है, भारतीय नहीं है।
- ३—उर्दू में अरबी और फारसी के शब्दों की भरमार है।
- ४—चूँकि उर्दू में अरबी और फारसी के शब्दों की भरमार है और चूँकि मुसलमानों का सम्प्रदाय-ग्रन्थ 'कुरान' अरबी में है, इसलिए यह सिद्ध ही है कि वह मुसलमानों की भाषा है।

अनेक भारतीय लेखक—जैसे सर्वश्री राजाराव, आर० के० नारायण आदि अंग्रेजी में लिखते हैं। पर उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि अंग्रेजी भारत की भाषा है। ये उर्दू के लेखक चीख चीखकर कर रहे हैं कि "सरकार उर्दू के साथ सौतेला व्यवहार कर रही है तथा हिन्दी का पक्ष ले रही है। उर्दू को कुचलने का सभी ओर से प्रयास हो रहा है" अमर उजाला, १२-११-७३, मुख पृष्ठ) चुनाव के ठीक पूर्व अखिल भारतीय गैर-मुस्लिम उर्दू लेखकों का सम्मेलन उत्तर-प्रदेश की राजधानी लखनऊ में आयोजित हुआ है। चुनाव के पूर्व ही सरकार ने उर्दू के साथ सौतेला व्यवहार किया है। इन बातों को यह कह कौन रहे हैं, कुछ "गैर-मुस्लिम" उर्दू लेखक!

इससे यह समझने में किसी को कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि इस सम्मेलन के पीछे राजनीति है। वोट लेने की राजनीति ! सत्ता हथियाने की राजनीति ! अल्पसंख्यकों के सन्तुष्टीकरण की राजनीति ! देश के अहित की राजनीति !

भाषा के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि कोई भी व्यक्ति माँ के पेट से भाषा सीखकर नहीं आता। भाषा 'बोलने' से तथा 'पढ़ने' से आती है। ये उर्दू लेखक यदि हिन्दी और संस्कृत पढ़ते, तो इनको भी सीख सकते थे। अस्तु, उन्होंने उर्दू पढ़ी है, इसमें भी कुछ बुरा नहीं। भाषाएं सीखनी चाहिए। किन्तु इस प्रकार सीखने से ही कोई भाषा भारतीय नहीं होजायेगी। मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि उर्दू में अरबी और फारसी के शब्द अधिक हैं, बल्कि, जिस प्रकार संस्कृत-निष्ठ हिन्दी उच्चस्तर की मानी जाती है उसी प्रकार अरबी-फारसी-शब्द-बहुल उर्दू उच्च स्तर की मानी जाती है। जब अरबी और फारसी विदेशी भाषाएं हैं, तो उर्दू भारतीय कैसे हो सकती है ?

उर्दू में से यदि अरबी और फारसी के शब्द निकाल दिए जाएं और उसकी लिपि देवनागरी कर दी जाये, तो जो शेष रहेगा, वह हिन्दी होगी। इसका कोई उत्तर फिराक गोरखपुरी या कृष्ण चंदर के पास है ?

उर्दू वालों को हिन्दी और संस्कृत से कितनी चिढ़ है यह बताने की आवश्यकता नहीं है। रेडियो की उर्दू मजलिस में कभी आप 'आकाशवाणी' शब्द नहीं सुनेंगे, क्योंकि यह शब्द संस्कृत का है। इसके स्थान पर वे 'आल इंडिया' का प्रयोग करते हैं। वे 'भारत' शब्द का भी प्रयोग नहीं करते 'हिन्दी', इंडिया' या 'हिन्दो-स्तान' का प्रयोग करते हैं। क्या यह देश द्रोह नहीं है ? उर्दूवाले अंग्रेजी के शब्द ग्रहण कर लेंगे, परन्तु हिन्दी या संस्कृत का एक भी शब्द ग्रहण नहीं करेंगे।

मैं फिराक गोरखपुरी साहब को चुनोती देता हूँ कि वे देव भाषा के अमर काव्य 'ऋग्वेद', 'सामवेद' 'यजुर्वेद' तथा 'अथर्ववेद' जैसा एक भी ग्रंथ उर्दू ही 'नहीं', विश्व की किसी भी भाषा में दिखा दें ! 'रामायण' और 'महाभारत' जैसे ग्रन्थ उर्दू में बताएं तो सही ! इस देश का अन्न खाकर और पानी पीकर इसी देश की भाषा को गाली देने में इन्हें लज्जा नहीं आती होगी, किन्तु हमारा सिर अवश्य लज्जा से झुक जाता है, यह सोचकर कि इस देश में अब भी वैसे जयचन्द हैं। उर्दू इस देश की भाषा नहीं है, उर्दू का जो पक्ष लेते हैं, वे स्वार्थी देशद्रोही हैं।

—श्रीमत् शिवराज

विचार मेरे : मरजी आपकी

मेरा सभी 'जन-ज्ञान, पाठकों एवं आर्य वन्धुओं से नम्र निवेदन है कि बहुत शीघ्र आर्यसमाज की शताब्दी आरही है। इसके साथ ही १२ जून १९७४ को "सत्यार्थ प्रकाश" शताब्दी भी है इस दिन सत्यार्थ प्रकाश की उम्र पूरे सौ बरस हो जावेगी। जिस ग्रन्थ को प्रकाशित हुए एक शताब्दी बीत जाने पर "आर्यजन" (भारतीय) उससे अनाभिज्ञ रहें, इससे बड़े दुःख का और क्या विषय हो सकता है। अतः हर आर्य का कर्तव्य हो जाता है कि इस वर्ष अधिक से अधिक "सत्यार्थ प्रकाश" वितरित कर हमारे भाई बहनों एवं साथियों को "सच्चा धर्म"

क्या है, “सच्चा ईश्वर” क्या है एवं मानव का कर्तव्य क्या है, का बोध कराने का सौभाग्य प्राप्त कर इस पुनीत अवसर को हाथ से न जाने दें।

उपरोक्त कार्य को सरल एवं सीधा बनाने के लिए मेरे निम्न सुझाव पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हैं—प्रथम सभी आर्य वन्धु यह तय कर लें कि अपने यहां पर होनेवाले उत्सव, विवाह या किसी उत्सव पर सम्मिलित होने पर दी जाने वाली या ली जाने वाली भेंट का स्वरूप “सत्यार्थ प्रकाश” एवं ‘स्वामी दयानन्दजीवन चरित्र’ ही हो। विवाह के उपलक्ष्य में दी जाने वाली वारातियों को भेंट (नुत) के रूप में ‘सत्यार्थ प्रकाश’ एवं ‘ऋषि जीवन चरित्र’ जो कि २-०० + २-५० = कुल ३) ५० के होते हैं हर व्यक्ति उपरोक्त राशि की भेंट दे ही सकता है। अनुमान है कि इससे कहीं ज्यादा ही अन्य भेंट दी जाती है जिसका कोई महत्त्व नहीं रहता है। इस प्रकार हम अपने लक्ष्य पर भी पहुँच जावेंगे, एवं इतनी बढ़िया, सुन्दर तथा सस्ती कोई भेंट अन्य नहीं हो सकती है। इसी बहाने कुछ ही समय में भारत के हर घर में ‘सत्यार्थ प्रकाश’ पहुँच जावेगा।

दूसरा उपाय जन-ज्ञान से माननीय सदस्यों, पाठकों एवं संस्थान को अपनाना है वह यह है कि हर जन-ज्ञान का सदस्य एक वर्ष के लिए यह प्रतिज्ञा कर ले कि वह प्रति माह अपने जनज्ञान के अंक के साथ एक “सत्यार्थ प्रकाश” मंगाकर अपने इष्ट मित्रों, रिश्तेदारों, ग्राम नगर वासियों या जान पहिचान वालों को मुफ्त बाँट देवे। इस प्रकार एक वर्ष में केवल जनज्ञान के सदस्यों द्वारा ही एक लाख से अधिक घरों में “सत्यार्थ प्रकाश” पहुँच जावेगा एवं कोई विशेष आर्थिक भार या कठिनाई भी महसूस नहीं होगी एवं हम अनायास ही इस प्रकार अपने लक्ष्य के नजदीक पहुँचने में समर्थ हो जावेंगे। तथा दयानन्द संस्थान को भी अपने जनवरी फरवरी ७४ का शामिल विशेषांक “सत्यार्थ प्रकाश” के रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए कि ताकि एक माह में दस हजार “सत्यार्थ-प्रकाश” लोगों को अनायास ही पढ़ने को मिल जायेंगे एवं मार्च के अंक में “दो मित्रों की बातें” जो सत्य प्रकाशन वृन्दावन मार्ग मथुरा के यहां की छोटी सी बहुत ही उपयोगी पुस्तक है उसे प्रस्तुत करना चाहिये यह पुस्तक कम पढ़े लिखे एवं ग्रामीण माताओं बहिनों तथा भाईयों के लिए अति उपयोगी सिद्ध होगी। उपरोक्त पुस्तक एक तरह सत्यार्थ प्रकाश का छोटा और सरल स्वरूप है जो छोटे बच्चों के लिए भी हितकारी है।

तीसरा साधन जो सम्पन्न व्यक्ति हैं उन्हें अपने यहां पर होने वाले विवाह जैसे उत्सवों पर मेहमानों को भेंट स्वरूप वेद की एक जिल्द कोई एक वेद भेंट में देने का दृढ़ संकल्प कर लें तो शीघ्र ही भारत भूमि वेदमय हो जावेगी।

मंगरोप (भीलवाड़ा)

—कपलाल सोमानी

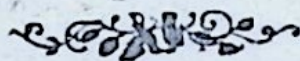
आप के परिवार में यदि चारों वेद नहीं
हैं तो आज ही १०१ रु० भेज कर
चारों वेदों का भाष्य मंगाइये

हम कौन कहाँ कितने क्या ? इन प्रश्नों का उत्तर-चिन्तन जीवन का सत्य रूप । उलझन के पार आइये जानें तो सही प्रभु की कारीगरी का विस्तार—एक ज्ञानवर्धक लेख—

विशाल ब्रह्माण्ड !

प्रभु की अपार लीला

हम 'कब' से 'कहाँ' ?



लगता है, शीर्षक वाले प्रश्न के कोई मानी नहीं ?—कब यानी 'अब' से 'कब' तक, और कहाँ यानी 'यहाँ' से 'कहाँ' तक ?—जहाँ मैं इस समय खड़ा हूँ मुझे आये पाँच मिनट हुए हैं, और घरा-घाम पर आये तिरपन वर्ष हो रहे हैं ! कहाँ यानी जहाँ अभी हूँ । कलकत्ता कहाँ है, यह भी भारतवर्ष के मानचित्र या सारी दुनिया के मानचित्र में भी सरलता से खोजा जा सकता है ?—और दुनिया ?—सौर मण्डल में तीसरा यह, शुक्र और मंगल के बीच ? और सौर-मण्डल भी पूछ रहे हैं आप ? मतलब क्या है आपका ? अच्छा देखिए, सौर-मण्डल—यह जो आकाशगंगा है न, जिसे 'मिल्की वे' कहते हैं एक गैलेक्सी है चपटी, बीच में उठी हुई, किनारे से किनारे तक इसका व्यास है एक लाख प्रकाश वर्ष, और केन्द्र में ऊपर नीचे इसकी मुटाई है बीस हजार प्रकाशवर्ष !—सौर-मण्डल इसके केन्द्र से एक ओर प्रायः ३०,००० प्रकाशवर्ष दूर है, और इस जगह उसकी मुटाई है प्रायः तीन हजार प्रकाश वर्ष ? प्रकाशवर्ष से यहाँ तात्पर्य उस दूरी से है जिसे प्रकाश प्रति सेकिण्ड १,८६,२८२ मील की गति से एक वर्ष में पूरा कर सके ।

और तब आप सहज ही पूछ सकते हैं कि हमारी यह गैलेक्सी—आकाश गंगा या मिल्की वे कहाँ है ? नहीं, मैं आपको उत्तर नहीं दे सकूंगा, किन्तु आपके साथ चलकर देखने की चेष्टा अवश्य कर सकता हूँ ? आइए, मेरे साथ हो लीजिए, यदि आप संख्याओं और दूरियों से घबरा न जायें, थक न जायें ।

निरभ्र-रात्रि में आपने आकाशको असंख्य तारोंसे भरा अवश्य देखा होगा। जितने नक्षत्र हमें दिखाई देते हैं, वे प्रायः एक ही गैलेक्सी के नक्षत्र हैं, और यह अन्तरिक्ष ऐसी कई भीषणकाय गैलेक्सियोंसे भरा हुआ है? गैलेक्सियाँ भी, मनुष्यकी तरह ही, प्रायः समूह में ही रहना पसन्द करती हैं, वह समूह कभी हजार गैलेक्सियों का भी हो सकता है, और कभी केवल दो का भी। हमारी आकाशगंगा-गैलेक्सी के समूहमें केवल एक और गैलेक्सी है, एण्ड्रोमिडा-राशिमें इसी नामसे पुकारी जाती हैं। इसका खगोलिक नाम एम-३१ भी है। इसे खुली आंखों किसी साफ अँधेरी राशि में देखा जा सकता है, यदि स्थान का ठीक पता हो।

पेलोमर वेधशालाके बृहत्तम २०० इंच दूरबीन से प्रायः एक अरब गैलेक्सियाँ देखी जा सकती हैं। इनकी दूरी को यदि मीलों में अभिव्यक्त किया जाये तो १० के आगे ३६ शून्य जोड़ने होंगे, अंक-शास्त्रमें इस संख्याको 3×10^{36} द्वारा व्यंजित किया जाता है। हमारा यह सबसे बड़ा उपलब्ध दूरबीन है, इससे ब्रह्माण्डकी सीमा छुई जा सकती है। गैलेक्सियाँ और भी कई गुनी बड़ी संख्या में उपलब्ध हो सकती हैं।

गैलेक्सियाँ अपने समूह में गतिशील हैं! कभी-कभी दो गैलेक्सियाँ आपस में टकरा भी सकती हैं। किन्तु इस टकराहट में उनके नक्षत्र प्रायः नहीं टकराते क्योंकि तुलनात्मक दृष्टि से ये नक्षत्र काफी छोटे, और उनके बीच की दूरी (अवकाश) बहुत अधिक होती है। गैलेक्सियों में गैसके विशालकाय बादल भी होते हैं, और मुठभेड़ होने पर ये बादल अवश्य टकराते हैं। इस प्रकारके संघर्ष में गैस भीषण आन्दोलन के साथ गतिशील हो उठती है, और उसका ताप बहुत अधिक बढ़ जाता है। ऐसा जब होता है, तो उनमें से रेडियो-तरंगें निर्गत होती हैं। साँ किलोवाट का पार्थिव रेडियो स्टेशन काफी शक्तिशाली समझा जाता है। साइनस नामक राशिमें एक ऐसे ही संघर्ष के फलस्वरूप, लक्ष्य किया गया है कि उससे 10^{41} किलोवाट शक्ति की तरंगें निर्गत हुई हैं।

वेध से प्रतीत होता है कि गैलेक्सियों के समूह परस्पर एक-दूसरे से दूर हटते चले जा रहे हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं कि हमारी पृथ्वी केन्द्र में है। ब्रह्माण्डका कोई केन्द्र हो ऐसा सम्भव नहीं लगता। यह मान्यता ब्रह्माण्ड-रचना के एक सिद्धान्त का परिणाम है, जिसे विस्फोट-सिद्धान्त कहते हैं। गैलेक्सियाँ, इस सिद्धान्त के अनुसार, अपने से दूर हटती जा रही हैं—कहा सकता है कि समय के साथ अन्तरिक्ष खाली होता चला जा रहा है। इससे यह भी प्रतिपादित होता है कि पहले अन्तरिक्ष खूब सघन ठसाठस भरा हुआ था। यदि फैलाव आद्यकालीन हो तो कहना होगा कि तब सब गैलेक्सियाँ एक केन्द्र में सिमटी हुई ठस भरी थीं। नभोभौतिकी के विद्वानों (astro-Physicists) की मान्यता है कि आठ या नौ अरब वर्ष पहले ब्रह्माण्ड एक दम ठोस था।

गैलेक्सियों के नक्षत्रों की उमर जानने का एक उपाय नक्षत्रों के भीतर उनकी नाभिक प्रक्रिया के अवधारण से है। इस गणना से प्राचीनतम नक्षत्रों का उद्भव प्रायः आठ या नौ अरब वर्ष ही पाया जाता है। यह बड़ी दिलचस्प बात है। इससे लगता है कि यह ब्रह्माण्ड प्रायः पाँच अरब वर्ष पूर्व पैदा हुआ और हमारी गैलेक्सी प्रायः पाँच अरब वर्ष पूर्व पैदा हुई। इस सिद्धान्त के मूल तत्त्व ये हैं कि प्रारम्भ में ब्रह्माण्ड-द्रव्य एक स्थान पर सघन अवस्था में पूंजीभूत था, जबकि उसमें एकाएक एक भयानक विस्फोट हुआ। इस विस्फोट के फलस्वरूप द्रव्य (Matter) धीरे धीरे बिखरता

स्थान और समय दोनों ही एक दूसरे में गुंथे हुए ही तो हैं ! —

सृष्टि के आदि में जब समस्त द्रव्य एक जगह पूंजीभूत था,

तब उसी पुंजमें 'स्थान' और 'समय' भी तो सिमटे पड़े थे ! —

और विस्फोट के साथ ही द्रव्य फैला स्थान में भी और समय में भी ? —

तब समय से पृथक् स्थान कहीं है क्या,

या स्थान से पृथक् समय कहीं है क्या ? 'मैं यहाँ हूँ'

इसका तात्पर्य ही है कि किसी समय-विशेष में मैं किसी स्थान-विशेष पर हूँ ?

गया और जो अबतक उसी विखराव की अवस्था में है । विस्फोट के प्रायः एक अरब वर्ष बाद गैलेक्सियों के समूह अस्तित्व में आये । अनन्त काल तक यह विखराव चलता रहेगा । इस तरह विस्फोट सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड का उद्भव एक निश्चित समय पूर्व हुआ था । इस सिद्धान्त के अनुसार विखराव का यह क्रम कभी समाप्त न होगा । भविष्य में एक क्षण ऐसा आयेगा जब कि अन्तरिक्ष एक निराकार समरस शून्यता के अतिरिक्त कुछ न रहेगा । गैलेक्सियों के भीतर की सभी क्रियायें शून्य पड़ जायेंगी, नक्षत्र और नहीं चमकेंगे, ऊर्जा के सभी स्रोत सूख जायेंगे ।

सौ के लगभग ज्ञात रासायनिक तत्त्वों के विकास को भी इस सिद्धान्त की पृष्ठ भूमि में देखा गया है । जिस प्राचुर्य के साथ ये तत्व यहाँ पाये जाते हैं, वह सर्वत्र समान है ।

सबसे सादे हाइड्रोजन तत्त्व से ही विशेष प्रक्रिया-द्वारा इनका निर्माण हुआ होगा । शायद कार्बन, आक्सीजन, लौह आदि के जटिल तत्त्व भी हाइड्रोजन के सादे तत्त्वों से ही बने होंगे । विस्फोट-कालकी प्रारम्भिक घनता और असीम उष्णता ही इसके लिए उत्तरदायी रही होगी । यदि ऐसा हुआ हो तो आजके ये जटिल तत्त्व उन प्राक्कालीन तत्त्वों के भग्नावशेष ही कहे जायेंगे ।

किन्तु, जैसा कि ऊपर कहा गया है, यह बात इस स्वीकृति पर निर्भर करती है कि जटिल तत्त्वों का अनुपात सर्वत्र समान होना चाहिए, स्थानीय अपवादों के लिए भी इसमें गुंजायश नहीं होनी चाहिए । किन्तु आधुनिक नाभिक-भौतिकी के ज्ञान से ऐसा प्रमाणित नहीं होता । पाया गया है कि हमारी गैलेक्सी के सूर्य-जैसे मध्यावस्था के नक्षत्रों की अपेक्षा प्राचीनतम नक्षत्रों में जटिल-तत्त्वों का जमाव बहुत कम है । इससे यह प्रतिपादित होता है कि जटिल अणुओं की उत्पत्ति नक्षत्रों के भीतर ही होती है, उसका ब्रह्माण्ड के प्रारम्भिक इतिहास से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

यह जिज्ञासा स्वाभाविक ही है कि यदि कभी द्रव्य की ऐसी अतिसघन स्थिति थी तो उस समय के नाभिक-भग्नावशेष क्यों नहीं पाये जाते ? हां, यदि उस अति सघन द्रव्य का तापमान हमारी कल्पित ताप-मात्रा से बहुत अधिक रहा हो तो यह सम्भव हो सकता है । हम जान गये हैं कि हाइड्रोजन के तत्त्वों के मिलाप को रोकने के लिए और अधिक ताप की आवश्यकता होती है । इस आवश्यकता ने ब्रह्माण्ड-उद्भव के एक दूसरे सिद्धान्त को जन्म दिया है, जिसे संकोच का सिद्धान्त कहा जाता है ।

विद्वानों का मत है कि उस प्रारम्भिक अति-सघन द्रव्य का प्रारम्भिक विस्फोट इतना उग्र न रहा होगा कि वह समग्र-विखराव पैदा कर दे। उनका विश्वास है कि गैलेक्सियों के विखरने की गति धीरे-धीरे कम होती जा रही है, और एक क्षण ऐसा आयेगा जब कि यह विखराव थम जायेगा। तब गुरुत्वाकर्षण इन समूहों को पुनः एक-दूसरे की ओर केन्द्राभिमुख करेगा, यानी ब्रह्माण्ड की गति तब संकोचन की ओर प्रवृत्त होगी। धीरे-धीरे ये समूह उत्तरोत्तर वेग से एक-दूसरे की ओर खिचेंगे, यहाँ तक कि पहले गैलेक्सियाँ और फिर बाद में नक्षत्र भी परस्पर टकरायेंगे। इस भीषण संकोच के फलस्वरूप अत्युच्च ताप निर्गत होगा, और उससे जटिल तत्त्वों के अणु विखर-विखर कर सादे हाइड्रोजन-अणुमें परिवर्तित होते जायेंगे। इसके साथ ही पुनः संकोचन की विलोम अवस्था, विस्तरण के लिए भूमि तैयार होती जायेगी।

सृष्टि-निर्माण का यह ऐसा चित्र है, जिसमें संकोचन और विस्तरण के द्वन्द्वों का अनन्त चक्र है। विस्तरण के फलस्वरूप गैलेक्सियाँ, नक्षत्र, ग्रह-उपग्रह बनते हैं। नक्षत्रों में हाइड्रोजन से ऊर्जा मिलती है ताकि जटिल अणुओं का निर्माण हो सके। संकोचन के समय यह सारी क्रिया विपरीत क्रम से सम्पन्न होती है। प्रत्येक आवर्त पूर्ववत् दोहराता है, और इन चक्रों का न कोई आदि है न अन्त। संकोच-विकोच के एक आवर्त की अवधि प्रायः तीस अरब वर्ष होती है। इस समय हमारा ब्रह्माण्ड विस्तरण की दिशा में प्रायः आधी अवधि पार कर चुका है।

इस सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड में द्रव्य का परिमाण परिमित है, अन्तरिक्ष भी इसी तरह परिमित है, उसी तरह जिस तरह किसी गोले की सतह परिमित होती है, यद्यपि उसका अन्त नहीं होता, सीमा नहीं होती। विस्तरण में सारा क्षेत्र गुब्बारे की तरह फूटता है, जिसका हर बिन्दु दूसरे बिन्दु से दूरतर होता जाता है। संकोच की स्थिति में अन्तरिक्ष केन्द्राभिमुख होकर एक बिन्दु के रूप में पर्यवसित हो जाना चाहता है।

सृष्टि-उद्भव की एक और तीसरी मान्यता सनातन-अवस्था का सिद्धान्त है जो इन दोनों मान्यताओं से पृथक् है। पहले दोनों सिद्धान्तों का आधार इसी मान्यता पर है कि जितना द्रव्य आज है उतना ही अतीत में भी था। यदि यह आधार गलत हो तो द्रव्य की प्रारम्भिक अतिसघन अवस्था की बात मिथ्या हो जाती है। अतः इस सम्भावना पर विचार किया जाये कि अतीत में आज के इतना द्रव्य न था और भविष्य में जो द्रव्य अस्तित्व में आनेवाला है वह आज विद्यमान नहीं है।

आज का भौतिक-शास्त्री द्रव्य के किसी कण (Particle) को स्थायी नहीं मानता। एक कण को दूसरे में परिवर्तित करना और नये कण बनाना अब असम्भव बात नहीं है। ये क्रियाएँ कुछ तो आणविक-नाभिकणों से सम्बन्धित शक्ति के क्षेत्र में और कुछ विद्युच्चुम्बकीय क्षेत्रों में होती हैं। अणु की नाभियों को एकत्र बंधे रखने में ये क्षेत्र ही उत्तरदायी हैं और सभी प्रकार की ऐसी विद्युच्चुम्बकीय बाधाओं, जैसे एकसरे या रेडियो-तरंगों के लिए भी ये ही क्षेत्र जिम्मेदार हैं। ब्रह्माण्ड के विस्तरण में इस अस्थायित्व कोई महत्त्व नहीं है, किन्तु गुरुत्वाकर्षण के क्षेत्र में हमें इस अस्थायित्व की परीक्षा करनी चाहिए। इसी गुरुत्वाकर्षण की वजह से एक छत्रीधारी (Parachutist) जमीन पर लौट आता है, और इसी से पृथ्वी सूर्य के इर्द-गिर्द चक्कर लगाती रहती है। यानी सृष्टि के क्षेत्र का नियन्त्रण इस गुरुत्वाकर्षण के ही हाथ है।

गुरुत्वाकर्षण-शक्ति का प्रयोग पृथ्वी की किसी रसायनशाला में सम्भव नहीं । लेवोरेटरी में बहुत ही कम द्रव्य उपलब्ध होने से सच्चे गुरुत्वाकर्षण का निर्माण नहीं किया जा सकता । हां, आणविक और विद्युच्चुम्बकीय क्षेत्र अवश्य रसायन-शाला में तैयार किये जा सकते हैं । नाभिक-क्षेत्र तो एक अणु में भी देखा जा सकता है । गुरुत्वाकर्षण की परीक्षा के लिए तो सृष्टि के सारे द्रव्य के समवेत आकर्षण की परीक्षा करनी होगी, और इसका कोई तरीका अभी तक खोजा नहीं जा सका है । अतः उपाय केवल यह है कि हम दोनों विरोधी सम्भावनाओं की अलग-अलग परीक्षा करके ही देखें । एक सम्भावना तो यह कि गुरुत्वाकर्षण के क्षेत्र में कणों में स्थायित्व है, और दूसरी सम्भावना यह कि इनमें स्थायित्व नहीं है । आइन्स्टाइन द्वारा प्रस्तुत सापेक्षता के सामान्य सिद्धान्त-द्वारा अस्थायित्व की परीक्षा की जा सकती है । यद्यपि इसमें एक विशिष्ट सांचे का प्रयोग किया जाता है, और इस के कारण इस प्रयोग की सार्वभौमिकता (सर्वस्थानिकता) पर शंका उपस्थित की जा सकती है ! — शंकाओं को प्रस्तुत करते समय हमें या तो यह मानकर चलना होगा कि अस्थायित्व द्रव्यों के सम्यक् निर्माण में सहायक होता है, या फिर द्रव्यों के सम्यक् नाश में सहायक होता है । एक ही साथ दोनों भूमिकाएँ अस्थायित्व नहीं ले सकता, क्योंकि यह नहीं माना जा सकता कि ब्रह्माण्ड में एक साथ एक तरफ निर्माण का क्रम चल रहा है और दूसरी तरफ नाशका क्रम ! आइन्स्टाइन के गणित के सूत्रों से यह स्पष्ट हो गया है कि अन्तरिक्ष में द्रव्य की एक निश्चित औसत घनता से अधिक घनता सम्भव नहीं है, अतः ब्रह्माण्ड के सम्यक् विस्तार के बिना, द्रव्य का सम्यक्-निर्माण सम्भव नहीं हो सकता । इसी तरह जिस प्रकार द्रव्य के निर्माण का सम्बन्ध ब्रह्माण्ड के विस्तरण से है, द्रव्य के नाश का सम्बन्ध भी ब्रह्माण्ड के संकोच के बिना सम्भव नहीं है । स्पष्ट है कि ब्रह्माण्ड एक ही साथ संकोच-विकोच नहीं कर सकता ।

विश्व में द्रव्य की एकरस औसत सघनता बनी रहती है, अतः गैलेक्सियों की संघनन शीलता भूत-भविष्य और वर्तमान में एक रस ही रहेगी । यह सम्भावना भी विचारणीय है कि अन्तरिक्ष में द्रव्य अत्यन्त उष्ण हो और गैलेक्सियों का निर्माण ठण्डे होते हुए द्रव्य के स्थानीय बुलबुलों में सम्पन्न होता हो । इस तरह बुलबुलों के भीतर का दबाव बाहर के घिरे गरम द्रव्य की अपेक्षा कम हो जाता है जिस से कि बुलबुले में भयानक संकोचन पैदा होता है । इस धारणा से गैलेक्सियों की निर्माण-प्रक्रिया से सम्बन्धित कई प्राचीन समस्याओं का उत्तर मिल जाता है । यह भी सम्भव है कि ठण्डा होने की प्रक्रिया का सार्ण्टिक रेडियो किरणों और कास्मिक किरणों की उत्पत्ति से सम्बन्ध हो । रेडियो-ज्योतिषियों को रेडियो संकेतों से ज्ञात भी हुआ है कि इस प्रकार ठण्डा होने की प्रक्रिया जारी है, और यह विश्वास करने के कारण है कि उनमें नयी गैलेक्सियों के निर्माण की दशा में क्रमवद्धता है ।

सम्यक् अवस्था सिद्धान्त में गैलेक्सियों के समूह फैलते हुए एक दूसरे से दूर होते रहते हैं किन्तु इस प्रक्रिया में बीच में कई गैलेक्सियों का निर्माण होता रहता है और यह भी इस तेजी से कि समय के साथ द्रव्य की घनता अन्तरिक्ष में औसतन एक रस बनी रहती है । विशिष्ट समूह बदलते हैं, विकसित होते हैं, किन्तु अपने-आप ब्रह्माण्ड में कोई परिवर्तन नहीं होता । इस तरह ब्रह्माण्ड के बारे में आदि और अन्त की समस्या उपस्थित ही नहीं होती । हर गैलेक्सी, हर नक्षत्र, हर अणु का आदि होता है, पर ब्रह्माण्ड वा नहीं । वह सहज ही विस्तरणशील है, जैसा कि 'ब्रह्माण्ड' शब्द स्वयं व्यंजित करता है ।

जैसा कि देखा गया है, जितनी ही दूर गैलेक्सी होगी, उतने ही वेग से वह देखने वाले से दूर भागती हुई जान पड़ती है। एक फुलाये जा रहे गुब्बारे पर यह सरलता से देखा जा सकता है कि उसका हर बिन्दु हर दूसरे बिन्दु से दूरतर होता जाता है। एक दूरी के बाद यह गति प्रकाश की गति से भी बढ़ जाती है। इस से आइन्स्टाइन के इस सिद्धान्त में कि किसी विशिष्ट योजना में किसी द्रव्य की गति प्रकाश की गति से नहीं बढ़ सकती, कोई अन्तर नहीं आता। एक बहुत दूर की गैलेक्सी हमारी विशिष्ट योजना में सम्मिलित नहीं हो सकती। यदि इन गैलेक्सियों के दूर हटने की गति प्रकाश की गति से तेज हो तो उनसे आनेवाले प्रकाश को ये गैलेक्सियाँ अपने साथ ही समेट ले जाती हैं, और इस तरह वे गैलेक्सियाँ हमारे लिए दर्शन-सुलभ नहीं रह जातीं।

हमारा सौर-मण्डल इस आकाशगंगा का बहुत ही क्षुद्र अंश है। एक अंधेरी निरभ्ररात्रि में जितने नक्षत्र हम खुली आंखों देख सकते हैं, वे सभी नक्षत्र इस आकाशगंगा के ही नक्षत्र हैं। अनुमान किया जाता है कि आकाशगंगा के कुल नक्षत्रों की संख्या तीन सौ अरब है। —आकाशगंगा के तारतम्य में सूर्य का विचार करते समय उसके ग्रहों को अलग से नहीं लिया जाता — उनका अस्तित्व शायद ही पहचाना जा सके! ८,६४,००० मील व्यास वाले सूर्य के सामने ८,००० मील व्यास की पृथ्वी का महत्त्व ही क्या हो सकता है? यद्यपि हम भूलोकवासी इसकी विशालता पर गर्व करने से कभी नहीं हिचकिचाते! पृथ्वी का भार 5.97×10^{27} ग्राम या 6.6×10^{21} टन बताया जाता है। यदि टनों की संख्या व्यक्त की जाये तो वह होगी ६,६००,०००,०००,०००,०००,०००,०००,००० टन! पृथ्वी की औसत घनता है ५.५२ ग्राम प्रति घन सेन्टीमीटर!

किन्तु सूर्य का भार है 1.99×10^{33} ग्राम। हमारी आकाशगंगा का समग्र-भार होगा ऐसे २०० अरब सूर्यों के भार के बराबर! इस सम्पूर्ण विस्तार में आकाशगंगा की घनता प्रति घन सेन्टीमीटर में एक अणु के हिसाब से अनुमानित की गयी है। पृथ्वी की तरह सूर्य भी आकाशगंगा की एक भुजा में अवस्थित अपने समस्त सौर-मण्डल के साथ धनुष-राशि के एक नक्षत्र-समूह के चारों ओर २२० किलोमीटर (१३६ मील) प्रति सेकेण्ड की गति से चक्कर लगा रहा है, और उसकी एक पूरी परिक्रमा को २२ करोड़ वर्ष लग जाते हैं।

सूर्य-प्रकाश को पृथ्वी तक पहुँचने में प्रायः आठ मिनट लग जाते हैं, किन्तु जो हमारा सबसे नजदीक का नक्षत्र है उसका प्रकाश हम तक पहुँचते-पहुँचते ४ से अधिक वर्ष ले लेता है। मीलों में उसकी दूरी हमसे है २६,०००,०००,०००,००० मील। अतः तीन सौ अरब नक्षत्रों की पारस्परिक दूरी की केवल कल्पना ही की जा सकती है। —और फिर कितनी अरब गैलेक्सियाँ इस ब्रह्माण्ड में फैली पड़ी हैं? एक गैलेक्सी के प्रकाश को दूसरी गैलेक्सी तक पहुँचने में प्रायः २० लाख वर्ष लग जाते हैं। किन्तु इतना होने पर भी ब्रह्माण्ड में खूब द्रव्य है। सम्पूर्ण आकाशगंगा सूर्य के भार से १६०,०००,०००,००० गुना अधिक भारी है। इतने सारे द्रव्य के बावजूद अन्तरिक्ष का अधिकांश बिल्कुल रिक्त या खाली ही कहा जाता है।

यह ब्रह्माण्ड निस्सीम किन्तु परिमित है उसी तरह जिस तरह एक गेंद की दो आयाम की सतह निस्सीम तो होती है किन्तु अपरिमित नहीं। यहाँ यूक्लिड की प्रचलित भूमिति काम नहीं कर सकती। अन्तरिक्ष के अवधारण में जिस अ-युक्लि-

डीय भूमिति का प्रचलन हुआ है, उनके अनुसार यह ब्रह्माण्ड भी उसी तरह निस्सीम किन्तु परिमित होगा। और यदि यह बात सही हो तो हम कल्पना कर सकते हैं कि एक अन्तरिक्ष-यान इस पृथ्वी-तल से उठकर सीधी रेखा में बिना मुड़े उड़ता चलेता चला जाये और आखिर एक क्षण ऐसा आयेगा कि वह यान पुनः इसी जगह आ पहुँचेगा, जहाँ से कि वह चला था। तैलोमर वेधशाला के २०० इंच व्यासवाले दूरदर्शक यन्त्र की दर्शन-क्षमता २ अरब प्रकाश वर्ष की दूरी तक ही है, इस से अवश्य हमें अपनी पीठ नहीं दिखाई दे सकती—दर्शन-क्षमता की वृद्धि के साथ यदि कभी हमें हमारी पीठ दिखाई दे जाये तो वह आज-जैसी है, वैसी नहीं बल्कि उतने अरब वर्ष पूर्व की होगी, जितने अरब वर्ष प्रकाश हमारी दृष्टि से चला था।—यदि हम इस सीधी रेखा की लम्बाई जान सकें तो इस ब्रह्माण्ड का क्षेत्रफल भी जाना जा सकता है। यद्यपि यह संख्या चौंका देने वाली होगी, किन्तु तब भी वह ऐसी संख्या तो होगी ही जिसका कि मान बताया जा सके। घन सेंटीमीटरों में इस ब्रह्माण्ड का प्रसार (Volume) तब १ के आगे ८४ शून्य लगाने से बोध होगा।

ऊपर आकाशगंगा की औसत घनता बतायी जा चुकी है। ज्योतिषियों ने ब्रह्माण्ड की औसत घनता की भी गणना कर ली है। एक के आगे २८ शून्य लगाने से जो संख्या आती हो, एक ग्राम द्रव्य के उतने हिस्से कर डालिए, और उस हिस्से की जो घनता एक घन सेंटीमीटर में होगी, वही ब्रह्माण्ड की औसत घनता है। पृथ्वी की घनता भी ऊपर बतायी जा चुकी है। जरा इनकी सापेक्ष घनता की तुलना कीजिए। इसी तरह हम इस विपुल ब्रह्माण्ड का भार भी बता सकते हैं। ग्रामों में यह संख्या होगी 4×10^{46} ग्राम, यदि टन प्राप्त करना हो तो शून्यों की संख्या को ५६ से घटाकर ५० कर दीजिए।

हम जानते हैं कि द्रव्य अणुओं से बनता है, और यह भी कि इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन से मिलकर बनता है अणु ! यदि समस्त ब्रह्माण्ड का विस्तार और भार परिमित हो तो उसके इलेक्ट्रॉनों की संख्या भी परिमित ही होगी। ब्रह्माण्ड में, अनुमान किया जाता है कि अणुओं की संख्या 24×10^{96} है, जब कि सूर्य में 12×10^{46} अणु हैं। ख्याल किया जाता है कि हमारा सूर्य, जो कि आकाशगंगा के औसत तारों-जैसा समझा जा सकता है, यदि गेहूँ के एक दाने के बराबर कल्पित किया जाये, तो इस ब्रह्माण्ड के सभी तारों के रूप में इतना गेहूँ इकट्ठा हो जायेगा कि जिस मालगाड़ी में उसे भरा जायेगा वह २,५०,००,००० मील लम्बी होगी।—और विस्तार की बात देखनी हो तो सूर्य और पृथ्वी को एक-एक बिन्दु मानकर एक फुट की दूरी पर रख दीजिये। सौर मण्डल का सबसे निकटतम नक्षत्र आल्फा सेण्टॉरी ४.२६ प्रकाश वर्ष दूर है। इस पैमाने पर उसे सूर्य से ५४ मील दूर रखना पड़ेगा।

ऊपर कुछ बात कही है मैंने वर्षों की, कुछ बात मीलों-मीटरों की ! —और स्थान तथा काल दोनों को एक सूत्र में गति के क्षेत्र में पिरोकर जिस 'प्रकाश वर्ष' की बात कही गयी है, वह भी ध्यान में होगी ही। कब से हम कहाँ हैं, यह प्रश्न जटिल से जटिलतर होता चला गया है। 'कहाँ' का उत्तर पाने के लिए किसी जगह हमें खूँटा गाड़ना पड़ेगा, और तब हम कह सकते हैं कि इस खूँटे से अमुक गज दूर सूर्योदय की दिशा में, फिर इतने गज दूर दाहिने हाथ की ओर, और फिर...। लेकिन इस अन्तरिक्ष में खूँटा कहाँ गाड़ा जा सकता है ? —सूर्य से नौ करोड़ मील की दूरी

बनाये हुए यह पृथ्वी उसके चारों ओर १८.५ मील प्रति सेकेण्ड की गति से चक्कर काट रही है, किन्तु यह सूर्य ही अपने सारे कुनवे के साथ खानाबदोश किसी धनुष-राशि के नक्षत्र के चारों ओर १३६ मील प्रति सेकेण्ड की गति से चक्कर काट रहा है, और यदि यह पता न भी हो कि यह सारी आकाशगंगा भी उसी तरह किसी दूसरे केन्द्र के चक्कर काट रही हो तब भी यह तो बताया ही जा चुका है कि इस क्षण-क्षण फुलाये जा रहे गुब्बारे पर दूसरी गैलेक्सियाँ ही नहीं, हमारी गैलेक्सी भी अपना स्थान छोड़ती चली जा रही है।

उसी तरह 'कब' के लिये भी क्या काल के क्षेत्र में ऐसा ही कोई किसी घटना का खूँटा नहीं गाड़ना पड़ता ? इसवी सदी पूर्व, और इसवी सदी बाद, या विक्रम संवत् ऐसी ही घटनाओं के खूंटों से तो गड़े हुए हैं — सन् और समय दोनों ही एक दूसरे में गुंथे हुए ही तो हैं ! — सृष्टि के आदि में जब समस्त द्रव्य एक जगह पंजीभूत था, तब उसी पुंज में 'स्थान' और 'समय' भी तो सिमटे पड़े थे ! और विस्फोट के साथ ही द्रव्य फैला — स्थान में भी और समय में भी ! — तब समय से पृथक् समय कहीं है क्या ? 'मैं यहाँ हूँ' इसका तात्पर्य ही है कि किसी समय विशेष में मैं किसी स्थान विशेष पर हूँ।

सो हे काल-स्थानातीत शान्ति-दूत ! मेरे लिये कोई सन्देश हो तो मुझे खोज लेने में तुझे तनिक भी कठिनाई न होगी, किन्तु यदि मुझे ही तेरी आवश्यकता हो जाये तो कहाँ खोजूँ मैं तुझे ? तेरी आवश्यकता मुझे है, यह शायद मैं नहीं जानता, कोई सन्देश भी मुझे तेरे द्वारा कहीं किसी अगम्य लोक में नहीं पहुँचाना है, किन्तु यह इसलिए तो है कि अपनी क्षुद्रता में मैं अपने-आप को इस योग्य ही नहीं पाता ! एक चींटी कैसे सोच सकती है कि उसे मानव-योजना में भी कोई भूमिका मिल सकती है ? — मेरा प्रश्न हो तो सचमुच मैं कब कहाँ — मैं कहीं हूँ भी, नहीं जानता, किन्तु प्रश्न यदि तेरा हो तो फिर कोई प्रश्न ही कहाँ है ? जो सब कुछ मुझसे बाहर है, वह सब कुछ तो तेरे भीतर ही है न !

—००—

समय, काल और देश के बन्धनों से मुक्त

एक मात्र ज्ञान है "वेद"

वेद का प्रचार प्रभु का प्रचार है

१०१) में चारों वेदों का भाष्य

घर-घर में पहुँचाइये !

लागत १६०) आ रही है—

मन्त्री, दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५

फाल्गुन, संवत् २०३०

ऋषिवर को

डा० परमानन्द शास्त्री,
M. A., M. O. L.

लोम-हर्षण तितिक्षा

परम तपस्वी स्वामी दयानन्द सरस्वती जब अपने सद्गुरु ऋषि विरजानन्द के ऋण से उक्तृण होने के लिए विश्व के विशाल समरांगण में उतरे तो वे सच्चे योद्धा के समान निरार्तक होकर कायिक कवच न पहनकर केवल वैदिक विज्ञान की ज्वलन्त एवं दुर्दान्त शक्ति को ही लिये हुए थे। उन्होंने विरोधियों को मर्मन्तुद करने वाला अमोघ सिंह नाद किया। उस प्रतापी वीर के सामने मुंह दिखाने का साहस कौन विश्व भर में कर सकता था। उनके हाथ में जन-जागरण का प्रतीक वैदिक “पाञ्चजन्य” नाम का वह शंख था जिसे अतुल पराक्रमी परम योगेश्वर श्री कृष्ण ने महाभारत के युद्ध के प्रारम्भ में निनादित किया था। अर्जुन तो दूसरे वीर को संरक्षक सारथि के रूप में आगे करके पीछे से तीर चलाने वाले थे। उनकी शक्ति अपनी न थी। वह तो देव-दत्त थी। इसलिए अर्जुन ने “देव-दत्त” शंख को उद्घोषित किया। भगवद् गीता में स्पष्ट लिखा है:—

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ॥

श्री कृष्ण शक्ति शाली होकर क्यों पार्थिव शस्त्रास्त्र धारण करते। अंतः उन्होंने निरस्त्र रहकर धनुर्धारी अर्जुन का नेता बनकर अपनी नित्य शक्ति से भौतिकवादी कौरवों की असंख्य पाप-वाहिनी के विरुद्ध अपना अमोघ “पाञ्चजन्य” अर्थात् (पंच जनों=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं अन्य सभी कोटि के) जनों के कल्याण के लिए अपना शंख ध्वनित किया था। उनका अध्यात्म-शंख था महा योगेश्वर अनुपम शक्ति शाली हमारे ऋषिवर भी परम दिव्य ज्योति से उद्भासित थे। उन्होंने भी निरस्त्र रह कर ही पाप-वाहिनी का विध्वंस करने के लिए जो सिंहनाद किया था—वह “पांचजन्य” ही कहा जा सकता है। विश्व मानव ही नहीं, उनकी

अमोघ वाणी विश्व भर के स्थावर जंगम जीव मात्र के लिए मंगल की स्रोतस्विनी थी। ऋग्वेद के शब्दों में दयानन्द की वाणी “पावका नः सरस्वती” थी और थी “वाजेभिः वाजिनी वती”। ऐसी अनन्त शक्ति-गर्भा परमपावनी दयानन्द सरस्वती की सरस्वती में सभी पाप-पाखण्ड बह गये। अतः पाखण्डियों के दुर्ग-पति पण्डा पुजारी, मुल्ला मौलवी या अन्य पोप लीला-प्रचारक भयभीत हो गये। उनके लिए ऋषि के सामने तर्क-तराजू पर अपने सिद्धान्तों को तोलने की शक्ति न रही। दयानन्द के दिव्य पाण्डित्य से अनेक शताब्दियों से चली आ रही, सायण, महीधर और उव्वट आदि विद्वानों की खोखली, अशुद्ध एवं विपरीतार्थक सभी व्याख्याएँ जो उन्होंने वेद पर की थीं असामान्य हो गयीं। मैकडानल, मैक्समूलर आदि तथाकथित विदेशी विद्वानों के नवीन वेद-भाष्य भी निष्प्रभ और अवैज्ञानिक कहे जाने लगे।

इस लिए जब विधर्मों आक्रान्ताओं को अन्य मार्ग न मिला तो सामने आने से कतराने लगे। परन्तु छल-कपट का मार्ग अपना कर वीर सेनानी दयानन्द को आतंकित करने के जाल रचने लगे।

रूढ़िवादी पौराणिक पोपों ने अपने अनगिनत अनुयायियों के साथ इन पर अनेकों बार घातक प्रहार किये। उनके पड़्यन्त्र उन्हें धमकाने या डराने के लिए ही नहीं थे—प्रत्युत वे ऋषिवर को मार डालना चाहते थे। स्वामी जी के प्रचारा-भियान के प्रथम पांच वर्षों में ही इनको मारने के लिए पांच बार हत्यारों ने आक्रमण किया। परन्तु यह तो ऋषि का अपना अलौकिक तेज था या उनके पास कोई अमोघ जादू था कि वे बच निकले और उनकी सौम्य, स्थिर और अदम्य निष्ठाओं के कारण उनके अनेक भक्तजन बन गये जिन्हें ऋषि के जीवन के प्रति अजस्र व्यग्रता रहती थी। तो भी ऋषिवर ने कभी हत्यारों की हत्या का मार्ग नहीं अपनाया। प्रत्युत उनकी भी वे मंगल कामना करते रहे।

मैं मोक्ष दिलाने आया हूँ—बन्धन में डालने के लिए नहीं

जब यह अद्भुत धर्म-प्रचार के लिए अनूपशहर गये तो एक ब्राह्मण बड़े विनीत भाव से इनके निकट आया। हाथ जोड़ कर बड़े अनुनय-विनय पूर्वक उसने ऋषिवर को ताम्बूल भेंट किया। स्वामी जी उस निर्धन ब्राह्मण को हताश करना न चाहते थे। भक्त वत्सल दयानन्द ने ताम्बूल लेकर मुख में रख लिया। दम्भी भक्त वहां से न गया कि अपनी कुचेष्टा का फल स्वयं वह देखना चाहता था। कुछ ही समय में ऋषिवर ने इसकी दुष्चेष्टा को भाँप लिया। क्योंकि उस पान में हत्यारे तथाकथित भक्त ने घातक महाविष मिला दिया था। धैर्य-मूर्ति ऋषि ने उसे कुछ न कहा और शान्तभाव से गंगा तट पर जाकर यौगिक क्रिया (न्योला कर्म) द्वारा अपने आमाशय को धो डाला और विष को निकाल दिया। परन्तु कहावत है कि “कतल छिपाये छिपता नहीं”। उस नगर के तहसीलदार सैयद महमूद को इस कुचक्र का पता चला चुका था और वह स्वामी जी का भक्त था। उसने इस ब्राह्मण को पकड़वा कर जेल में डाल दिया। तहसीलदार साहब को बहुत हर्ष हुआ कि उसने आततायी को पकड़ लिया है। इस प्रसन्नता और सन्तोष की मुद्रा में वह दिव्य दयानन्द के पास आये और उन्हें अपना युक्ति-युक्त कार्य निवेदन किया। परन्तु दयालु दयानन्द को इससे बहुत खेद और अवसाद हुआ। उन्होंने तहसीलदार साहब से आग्रह किया कि “उस हत्यारे को मुक्त किया जाए। क्योंकि मैं मानव समाज को सुखित दिलाने के लिए आया हूँ—उन्हें

बन्धन में डालने के लिए नहीं।” सैयद साहब ने अत्यन्त विस्मय के साथ उस अपराधी को मुक्त कर दिया।

महाराजा जसवन्तसिंह को भी भर्त्सना कर दी—सत्यनहीं छोड़ा।

जब ऋषिवर वेद प्रचार करते हुए जोधपुर गये थे तो उन्हें फैजुल्ला खां की कोठी में महाराजा की ओर से ठहराया गया। प्रतिदिन उपदेशों में भक्तों का ताँता बन्ध गया। सैकड़ों से हजारों हो गये। महाराज स्वयं चतुर्दिक् व्याप्त ऋषि की पावन कीर्ति को सुनकर उपदेशों में आने लगे। आग्रह करने पर भी वे कुर्सी पर न बैठकर अन्य भक्तों के समान ही बैठने में गौरव समझने लगे। यह बात स्वयं ऋषि ने अपने ३० जून वाले पत्र में लिखी है कि न केवल स्वयं महाराजा साहब प्रत्युत राजवंश के अन्य लोग भी प्रायः उपदेशों में आते थे।

भर्त्सना

एक बार स्वामी जी बिना सूचना दिये राज प्रासाद में असम्भावित वेल में चल पड़े। अघट-घटना-घटक भगवान् को शायद यही अभीष्ट हो। ऋषिवर को ज्ञात नहीं था कि उस समय “नन्हीं जान” (एक मुसलिम वेश्या) महाराज के पास ही थी। ऋषिवर के आगमन को सुनकर महाराज कि-कर्त्तव्य-विमूढ़ हो गये। नन्हीं जान को वहाँ से हटा-लेजाने का आदेश महाराज ने सहसा साहस करके दे तो दिया। परन्तु शीघ्रता में पालकी का सन्तुलन न रहा था। वह एक ओर गिरने को ही थी कि महाराज ने अपने हाथों से सहारा दे दिया।

योगेश्वर दयानन्द ने यह जुगुप्सित दृश्य देखा और आर्यावर्त्त के पतन की इस घृणित दशा को प्रत्यक्ष देख कर उनके नेत्र-द्वन्द्व से अग्नि-किरण सी मानो निकली हो जिससे वे इस पाप को भस्मसात् करना चाहते हों। निर्भीक दयानन्द ने सिंहनाद किया :—

“केसरी और कुतिया का साथ क्यों ? इस सहवास से कुत्तों का जन्म होगा। वैदिक मर्यादा की यह घृणित अवहेलना ?”

राजा और नन्हीं जान का दुर्भाग्य कहो या कि हमारी मातृ-भूमि का दुर्भाग्य था कि इस पावनात्मा संन्यासी ने ऐसा कठोर वचन कैसे कह डाला ? यह तो भगवत् प्रेरणा ही थी।

प्रतिशोध

नन्हीं इस व्यवहार को कैसे सह सकती थी ? महाराज उसे छोड़ देंगे और नन्हीं का यह वैभव धराशायी हो जायेगा—इस विचार से उसका हृदय प्रतिशोध की ज्वाला से झुलस उठा। निराशा के अन्धकार में क्रोध की अग्नि भभक उठी। धर्मात्मा परोपकारी सर्वमंगलकारी ऋषि के पावन प्राणों को ले लेने के लिए उसने निश्चय कर लिया। पापी को पाप से क्या भय ?

ऋषि के पाचक जगन्नाथ को बुलाया गया। नन्हीं ने अमित धन का प्रलोभन दिया और बड़ी नम्रता से उसे कहा कि दयानन्द को दूध देते हुए इस विष को उसमें मिला देना। जगन्नाथ कांपते हुए बोला—मेरे से यह काम न होगा। वे मुझ पर बहुत दया रखते हैं। मुझे पढ़ाते हैं। सन्ध्या के मन्त्र सिखाते हैं। वे मेरे गुरु हैं। मैं गुरु हत्या कैसे करूँ ?

नन्हीं ने पहले तो प्रलोभन दिया; साथ ही भय भा दिखाया। कहा कि महाराजा साहब मेरे वश में हैं। तुम्हें डरना चाहिये। यह काम करोगे तो मालामाल बन जाओगे।

लोभ ने कर्त्तव्य को भुला दिया। जगन्नाथ ने नन्हीं से महाविष ले लिया। उसमें कांच पीस कर डाला हुआ भी था। महर्षि ने सदा की तरह जगन्नाथ से दूध उस क्रूर निशा में लिया और विश्रब्ध मुद्रा में वे उस दूध को पी गये।

आधी रात के समय ऋषिवर ने पेट में तीव्र वेदना और कठोर गूल का अनुभव किया। बमन से उन्हें कोई लाभ न हुआ। महाविष इतना सूक्ष्म तथा तीव्र था कि न्योली क्रिया से भी उसे हटाया न जा सका। उपा काल और भी भयंकर निकला। ऋषि ने जगन्नाथ को बुलाया।

हत्यारे पर दया

धड़कते हृदय से जगन्नाथ मुंह नीचा किये सामने बैठ गया। महर्षि ने पूछा—

“मेरे नैश भोजन में क्या कुछ तुमने मिलावट की थी?”

“महाराज, सर्वथा नहीं। मुझे इसका कोई ज्ञान भी नहीं।”

ऋषि ने शान्तमुद्रा में दृढ़ता से कहा :—

“जो बात प्रत्यक्ष है उसे छिपाते क्यों हो? भले मानस, सच बतला दे! इस समय तुम्हारा जीवन खतरे में है।”

“मुझे अत्यन्त शोक है। मुझ पर दया करें। मैं क्षमा मांगता हूँ। मैंने आपके दूध में विष मिलाने की मूर्खता की है।”

यह कह कर जगन्नाथ ने ऋषि के चरण कमलों को नेत्र-जल से भिगो डाला।

भगवान् दयानन्द का करुणा-सागर मन हिलोरें लेने लगा। ऋषि का उसके प्रति स्नेह था। उन्होंने उसे प्राणायाम और सन्ध्या सिखाई थी। भक्त जगन्नाथ को कुछ चान्दीके टुकड़ों ने अन्धा बना डाला था। वह हिंसक बन गया। दयालु स्वामी के प्राणों को लेने के लिए चल पड़ा था। मृत्यु और जीवन की इस सन्धि बेला में भी दयानन्द को उस भूले भटके जगन्नाथ पर दया आ गई। स्नेह से मुसकरा कर ऋषि ने कहा :—

“जगन्नाथ! मुझे अपने प्राणों की चिन्ता नहीं। परन्तु मेरा कार्य अभी पूरा नहीं हुआ। तुम नहीं जान सकते कि तुमने मातृ-भूमि की कितनी हानि कर दी है। परन्तु मैं तुम्हें दोष नहीं दे सकता। भगवान् की यही इच्छा थी।”

महाराज करुणा से आप्लावित होकर उठे और सिसकते हुए जगन्नाथ को कुछ रुपये देकर कहने लगे :—

“जगन्नाथ, तुम धन चाहते थे। यह लो; और यहां से शीघ्र भाग जाओ ताकि तुम्हारी इस शरारत को कोई जान न जाये। नेपाल को चले जाओ। यहां अब एक क्षण भी न ठहरना। अपने किये को किसी को बताना भी नहीं।”

जगन्नाथ चला गया। एक मुसलिम डाक्टर ने, कहा जाता है कि, ऋषि की चिकित्सा करते हुए उन्हें बड़ी मात्रा में संखिया भी दे दिया था। नन्हीं जान के घृणित पड्यन्त्र में उसका भी बहुत हाथ था। श्री देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय के लिखे “जीवन चरित्र” में यह बात सप्रमाण सिद्ध की गई है।

ऋषिवर को दी गई असंख्य कायिक यातनाओं के अनवरत पद पद पर होते हुए भी महर्षि ने जो अपने हृदय को प्रशान्त सागर के समान गम्भीर तथा हिमालय के समान गौरव-मय एवं अटल बना रखा था उससे उनकी स्थिरप्रज्ञतना, असीम योग-सिद्धि की झलक ही दीखती है। सृष्टिवादी हिन्दु और मुसलमानों ने इनके प्राणों को लेने के लिए हत्यारों को प्रलोभन देकर नियुक्त किया था। इनके व्याख्यानों एवं शास्त्रार्थों में इन पर प्रक्षेपणास्त्र फेंके गये। इन्हें गालियां और अपशब्द कहे जाते थे कि “दयानन्द ईसाइयों का खरीदा हुआ एजेण्ट है। नास्तिक और दहरिया है।”

इस प्रखर-विरोध में जिस शान्त भावना और स्थिरता का परिचय ऋषिवर ने दिया उसका आभास नीचे लिखे उद्धरण से जो हमने मैडम ब्लैवतस्की (Madam Blavatsky) की पुस्तक “The Caves and Jungles of Hindustan” से लिया है—स्पष्ट मिलता है :—

“One is inclined to think that this wonderful Hindu bears a charmed life, so careless is he of raising the worst human passions, which are so dangerous in India. At Benaras, a worshipper of the Shiva, feeling sure that his cobra, trained purposely for the mysteries of a Shivaite pagoda, would at once make an end of the offender's, life triumphantly exclaimed : “Let this god vasuki (the Snake god) himself show which of us is right.”

Dayananda jerked off the cobra twisting round his legs and with a single vigorous movement crushed his reptile's head. Let him do so; he quitely assented; your god has been too slow. It is I who have decided the dispute. Now go ! added he address ing the crowd, ‘and tell every one how easily perish all false gods. Truly, a marble statue could not be less moved by the raging wrath of the crowd. We saw him once at work. He sent away all his faithful followers, forbade them either to watch him over or to defend him and stood alone before the infuriated crowd, facing calmly the monster ready to spring upon him and tear him 'o pieces.”

(The Caves and Jungles of Hindustan.)

उल्लिखित मैडम ब्लैवतस्की की पुस्तक से लिए हुए इस सन्दर्भ का भाव यह है कि :—

“हमें यह मानने को बाध्य होना पड़ता है कि इस अद्भुत एवं विस्मयजनक हिन्दू की जिन्दगी जादू से भरी हुई है। इसे इस बात की सर्वथा चिन्ता नहीं होती थी कि (इनके व्याख्यानों तथा खण्डनात्मक उपदेशों से) जनता का भयंकर रूप से क्रोधावेश भड़क उठता है और यह आवेश भारत में बड़ा खतरनाक होता है। बनारस में एक शिव का पुजारी स्वामी जी के व्याख्यान में आया। उसने एक फनीयर सांप को शैव क्रियाओं में खूब प्रशिक्षण दिया हुआ था। उसे निश्चय था कि यह सांप अवश्य स्वामी जी के प्राणों का अन्त कर देगा। वह पुजारी भीड़ में से उठा और चिल्लाया, “चलो, यह भगवान् वासुकि ही निश्चय कर देगा कि “हम दोनों में से कौन ठीक है।” भट उस सांप को स्वामी जी पर फेंक दिया।



शुभ विवाह



अम्बाला छावनी आर्यसमाज के प्रमुख कमन्ठ कार्यकर्ता श्री राजाराम-
सिंह जी के सुपुत्र का विवाह धूमधाम से सम्पन्न हुआ। वर वधु दोनों
को हमारा आशीर्वाद। —सम्पादक

दयानन्द ने भट उस फनीयर साँप को एक भटका दिया और अपनी टांग
के चारों ओर लिपटा कर जोर से एक ही भटके में उस साँप को कुचल डाला।
स्वामी जी ने तब दृढ़ता से कहा, “चलो इसे ही निर्णय करने दो।” साथ ही कहा
कि “तुम्हारा ईश्वर तो बहुत ढीला और धीरे काम करता है। यह निर्णय यह नहीं
कर सकता। मैंने ही कर दिया है।” फिर जनता को सम्बोधित करके उन्होंने कहा
“सभी मानव समाज को बतला दो कि झूठे देवता कैसे आसानी से नष्ट हो जाते हैं।”
यह सच है कि भीड़ के भड़के हुए क्रोध में पत्थर का वुत भी अपने आप को इस
स्वामी से अधिक स्थिर नहीं रख सकता।

मैडम ब्लैवतसकी आगे लिखती हैं “कि हमने स्वयं देखा है कि स्वामीजी अपने
श्रद्धालु भक्तों को वहाँ से निकाल देते थे और उन्हें आदेश दे देते थे कि वे न तो
हमारी देख भाल रखें और न ही हमारी रक्षा करें।” तब वे अकेले भड़की हुई भीड़
के सामने खड़े रहते थे—शान्ति से उस भयानक हत्यारी भीड़ का सामना करते जो
उनपर भपट कर उन्हें दुकड़े दुकड़े करने को तैयार होती थी।”

इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि ऋषि दयानन्द कितने धैर्यवान्, कितने
शूरवीर, और कितने ऊँचे दर्जे के योगी थे कि विदेशी विरोधी भी उन्हें जादू का
महामानव मानते थे।

क्या हम गुरुदेव दयानन्द के
जीवन से कुछ सीख सकेंगे ?

हा ! लाला चतुरसेन

२२ दिसम्बर की रात्रि को काल ने एक ऐसे व्यक्ति को हम से छीन लिया, जैसा व्यक्ति इस जीवन में संभवतः खोजने पर भी न मिले। आर्य समाज की सेवा जिन्होंने जीवन के हर सांस में की जिन्होंने अपना प्रत्येक पल आर्यसमाज को अर्पित कर दिया, वैसा महामानव आज कहां मिलेगा।

१९५३ से १९७४ तक २१ वर्ष के अपने परिचय में हमने उन्हें एक सा देखा। कभी रोष नहीं, सदा मुस्कराते। उदारता, प्रेम और प्रचार की उदात्त भावना उनका प्राण थी। उन्होंने सार्वदेशिक सभा और आर्यसमाज के लिए जो कुछ किया काश कि उस का मूल्यांकन कोई कर सकता। हम हृदय की समस्त पुनीत भावनाओं से उनके प्रति नत हैं, और आज भी उन का हंसता हुआ चेहरा नेत्रों के समक्ष है— उन्हें भूल भी कौन सकता है ?

—भारतेन्द्र नाथ



महाराज !

आर्य मित्र के व्यवस्थापक श्री नारायण गोस्वामी जी के युवा पुत्र श्री वीरेन्द्र गोस्वामीका पिछले दिनों अचानक देहावसान हो गया। युवा पुत्र की मृत्यु से गोस्वामी जी के हृदय को भारी आघात लगना स्वाभाविक ही था। हम प्रभु से दिवंगत की आत्मा के लिए शांति की प्रार्थना करते हुए इस कठिन कष्ट में गोस्वामी परिवार सेहादिक समवेदना प्रकट करते हैं।

—संपादक





ब्रह्माकुमारियां उत्तर दें!

श्री रामगोपाल जी शालवाले
उपप्रधान, सार्वदेशिक, सभा

१. आप कहते हैं कि सृष्टि को उत्पन्न हुए ५ हजार वर्ष हुए हैं, जब कि कोई शास्त्र और किसी प्रकार का इतिहास इस बात का समर्थन नहीं करता। सूर्य सिद्धान्त, जो कि ज्योतिष का सबसे पुराना एवं सर्वसम्मतग्रन्थ है, जिसे भारत तथा यूरोप के सभी बड़े-बड़े विद्वान् प्रामाणिक स्वीकार करते हैं, के अनुसार इस सृष्टि

को उत्पन्न हुए १ अरब ९७ करोड़ २६ लाख ४६ हजार ७४ वर्ष हो चुके हैं। इस बाकायदा गणना को निरर्थक नहीं कहा जा सकता। अन्यथा कहने का सामर्थ्य आज तक किसी को नहीं हुआ। प्रसिद्ध इतिहास के अनुसार रामायण-कालीन समय लगभग ८ लाख वर्ष सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं। महाभारत काल को ५ हजार वर्ष हो चुके। ऐसी अवस्था में ब्रह्माकुमारियों का यह कहना कि सृष्टि को ५ हजार वर्ष हुए, कोरी कल्पना है। न्याय दर्शन के अनुसार—“लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः न तु प्रतिज्ञामात्रेण।” किसी बात की सिद्धि लक्षण और प्रमाणों से ही होती है, केवल कह देने मात्र से नहीं। अतः किसी गणित शास्त्र का कोई प्रमाण हो तो उपस्थित करो, कोरी प्रतिज्ञा करने मात्र से आपकी बात की सिद्धि नहीं हो सकती। अतः ५ हजार वर्ष वाली बात कोरी गप्प है।

हमारी उपर्युक्त सृष्टि संवत् की काल गणना को आज का विज्ञान भी स्वीकार करता है। एवं पुरातत्त्व-विशारद अपनी खोज के आधार पर ही सृष्टि का आयु लगभग इतनी ही मानते हैं।

२. सृष्टि का उत्पन्न करने वाला परमात्मा है, यह आप भी स्वीकार करते हैं। कृपया बतलाने का कष्ट करें कि सृष्टि उत्पन्न होने से पूर्व अपनी कारणावस्था

में किस प्रकार की स्थिति में थी ? कृपया यह भी बतलाइये कि सृष्टि के उत्पन्न होने का क्रम क्या है ?

३. यदि ईश्वर सर्वव्यापक नहीं, तो सृष्टि-उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? बनाने वाला बनने वाली वस्तु के साथ रहा करता है या अलग होकर बनाता है ? सृष्टि किससे बनाता है ? कैसे बनाता है ? पंच महाभूतों के सूक्ष्म तत्त्व परमाणु रूप में आकाश की तरह व्यापक रहते हैं अथवा एकदेशी ? यदि आकाशवत् परमाणु सर्वत्र फैले रहते हैं तो एकदेशी परमात्मा जो कि व्यापक नहीं है, उन फैले हुए तत्त्वों को किस प्रकार गति दे सकता है ? उन तत्त्वों की आकाश में किस प्रकार स्थिति होती है । जड़ होने के कारण उनमें स्वयं बनने की सामर्थ्य तो होती नहीं, सर्वव्यापक न होने से परमात्मा किस प्रकार उनकी रचना करने में समर्थ हो सकता है ?

४. आकाश नाश रहित है या नाशवान् ? आकाश की परिभाषा करिए, आप आकाश किसे कहते हैं ? वह एकदेशी है या व्यापक ?

५. जीवात्मा और परमात्मा में क्या भेद है ? दोनों का लक्षण बता कर स्पष्ट करिये ।

६. क्या कोई एकदेशी पदार्थ सर्वज्ञ हो सकता है ? यदि नहीं, तो किसी शरीरधारी एकदेशी अल्पज्ञ जीवात्मा को ईश्वर मानना क्या जनता को धोखा देना नहीं ?

७. आपके मन्तव्यानुसार यदि दादा लेखराज स्वयं ईश्वर थे, तो दर्शन के इस सूत्र के अनुसार कि—

क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेशाः पंचक्लेशाः ॥

क्या इन पांचों क्लेशों से शरीरधारी होने के कारण मुक्त थे ? जब कि संसार में अब तक किसी शरीरधारी का ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिला ।

८. हमें प्राप्त सूचना के अनुसार दादा लेखराज ब्रह्माकुमारियों को अपनी गोदी में बिठाते थे । क्या मनु के कहे हुए अष्ट मैथुनों के अन्तर्गत आने से यह मर्यादा का अतिक्रमण नहीं है ?

९. ब्रह्माकुमारी संस्था के संस्थापक को साधारण मानव मानते हैं अथवा ईश्वर ? यदि ईश्वर नहीं मानते तो प्रजापिता किसे मानते हैं और कौन है ? कृपया पूर्णतः स्पष्टीकरण कीजिये ।

१०. प्रजापिता सर्वज्ञ है या अल्पज्ञ ? शरीरधारी है या निराकार ? सर्वव्यापक है या एकदेशी ?

यतः शरीरधारी मरणधर्मा है अतः दादा लेखराज मरणधर्मा थे अथवा नहीं ?

११. आपकी मान्यता के अनुसार जो सन्देश पुत्री ब्रह्मलोक में जाकर सन्देश लाती है उस ब्रह्मलोक का विवरण क्या किसी सन्देश पुत्री ने दिया ? इसकी जानकारी क्या दी जा सकती है कि ब्रह्मलोक कहां है ? क्या है ? कैसा है ?

१२. क्या यह सत्य है कि वर्तमान ब्रह्माकुमारी संस्था सिन्ध क्षेत्र में ओ३म् मण्डली के नाम से स्थापित की गई थी ? प्रथम शिष्या ओ३म् राघे के नाम से प्रसिद्ध थी । और ओ३म् मण्डली के सत्संग भवन के सामने श्री साधु टी. एल. वास्वानी तथा उच्च महानुभावों ने सत्याग्रह किया था ?

यदि आप में साहस हो तो उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर प्रकाशित कराकर देने की कृपा करें ।

समाजवाद का कोई लाभ नहीं

—आचार्य विनोबा भावे

अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के हमारे विश्लेषण से पता चलता है कि प्रशासन ने ग्रामीण विकास में निरन्तर पर्याप्त रुचि नहीं ली है। इसकी बुनियादी नीति एवं योजनाओं के विनियोजन ने ग्रामीण-शहरी विकास में विस्तृत अन्तर्गल पैदा कर दिया है। इनसे समाज के चन्द लोगों के हाथ में सम्पत्ति और आर्थिक शक्ति के तीव्र संकेन्द्रण को भी प्रोत्साहन मिला है।

लेकिन तब यह सवाल आता है कि सरकार ने ऐसा रुख क्यों अपनाया? क्या इसने समाज के समाजवादी ढांचे का अर्थ समझा था या अपने सर्वोत्तम मंतव्यों के बावजूद सरकार ने सब कुछ इसी तरह होने दिया?

यह कहने का मतलब कि सरकार की सर्वोत्तम इच्छा के बावजूद गांव और शहर के बीच दरार और बड़ी है, यह कहना होगा कि सरकार इतनी बुरी तरह अक्षम रही कि यह ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच बढ़ते हुए आमदनी और विकास के अन्तर को असहाय रूप से देखने के सिवा और कुछ नहीं कर सकी। इसका एक और मतलब यह होगा कि आर्थिक विकास के लिए सरकार के पास कोई स्पष्ट आर्थिक कार्यक्रम नहीं था। वह केवल 'आगे जाना' चाहती थी—'आगे जाने' की पूरी प्रक्रिया को समुचित रूप से स्पष्ट किये बिना।

ऐसे उपागम का परिणाम यह हुआ कि इससे अस्पष्टता और बड़ी, जिसके फलस्वरूप योजना में मिथ्या प्राथमिकताओं को बढ़ाने में प्रोत्साहन मिला। कुछ क्षेत्रों मुख्यतया दीर्घ स्तर के निर्माण क्षेत्र एवं व्यस्त स्वार्थों ने इस दिशाहीनता का पूरा लाभ उठाया और सामुदायिक संसाधनों पर बड़ी तेजी से अपना पंजा फेला दिया।

इसको दूसरे ढंग से यूँ कहा जा सकता है कि सरकार के पास समाजवाद की एक स्पष्ट धारणा कमी नहीं थी। सरकार के असंतुलित विकास कार्यक्रमों में इसका स्वरूप दिखलाई पड़ता है—इन कार्यक्रमों में सार्वजनिक (बुनियादी उद्योग) क्षेत्र विकास पर अधिक बल दिया गया था—बिना इस बात पर ध्यान दिये कि सामान्यतः ग्रामीण अवस्थापना एवं विशेषतः ग्रामीण विकास को कम प्राथमिकता देने से जनसाधारण का लाभ होगा या कुछ लोगों का। दूमरी ओर शहरी क्षेत्र भी बड़ी चिन्ता की गयी है। सम्भवतः सरकार ने यह सोचा कि दीर्घ स्तर के बुनियादी निर्माण क्षेत्र का समाजीकरण करके समाज के समाजवादी ढांचे की स्थापना शीघ्रतापूर्वक किया जा सकती है और इस क्षेत्र के उत्पादन का उपयोग सम्पूर्ण आर्थिक विकास को बढ़ावा

द देने के लिए हो सकता है। यह भी आशा थी कि इस उपागम से ग्रामीण समाजवाद स्वतः आ जायेगा।

असंतुलित विकास

दुर्भाग्य से समाजवाद के प्रति ऐसे हास्यास्पद उपागम से कोई लाभ नहीं हुआ है। अलवत्ते इससे एक ओर अर्थ-व्यवस्था को समुचित रूप से लाभ पहुँचाये बिना सार्वजनिक क्षेत्र में (अतिशय) विनियोजन हुआ है और दूसरी ओर दीर्घ स्तर के निजी क्षेत्र में आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण।

संक्षेप में, सरकार के शहर-केन्द्रित आर्थिक कार्यक्रम (जैसा कि औद्योगिक और सेवा क्षेत्रों के प्रति इसके उपागम में पहले ही देखा जा चुका है) एवं समाजवाद की इसकी अजीब व्याख्या से ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच संतुलित विकास को प्रोत्साहन नहीं मिला है और इससे धनवानों का धन और बढ़ा है तथा गरीबों की गरीबी में और इजाफा हुआ है।

भारत के सामने दो संकट हैं। एक आर्थिक विषमता का और दूसरा सामाजिक विषमता का संकट। जब तक हम दोनों संकटों का अहिंसक ढंग से उत्तर नहीं निकाल सकेंगे, तब तक स्थायी शान्ति कायम नहीं हो सकेगी। सामाजिक विषमता दूर करने के लिए जाति-पाति, भाषा, मजहब आदि के भेदभाव दूर होने चाहिए और हमारा आपसी प्रेमभाव बढ़ना चाहिए। आर्थिक विषमता दूर करने के लिए हमें कुछ ठोस कदम उठाने होंगे। हमारी पंचवर्षीय योजनाओं के मार्फत काम तो बहुत हुआ है, लेकिन अब तक हमारी मदद नीचे नहीं पहुँची है। यह काम ग्रामदान द्वारा हो सकता है।

—०—

चुटकुले

बच्चा—पिताजी, आप छोटे थे, तो आपके पिताजी आपको मारते थे ?

पिताजी—हां, बेटा !

बच्चा—और उन्हें उनके पिता मारते थे ?

पिताजी—जरूर !

क्षण भर सोचकर बच्चा बोला—आपका सहयोग मिल जाता तो यह पुश्तैनी हुड़दंग बन्द हो जाता।

×

×

×

अफसर—इससे पहले तुम क्या काम करते थे ?

उम्मीदवार—मैंने ४५ वर्ष एक कारखाने में काम किया है।

अफसर—तुम्हारी उम्र कितनी है ?

उम्मीदवार—३८ वर्ष।

अफसर—तो तुमने ४५ वर्ष कैसे काम किया है ?

उम्मीदवार—ओवरटाइम, श्रीमान् जी !

—संजीव तायल

स्वास्थ्य क्या है ?

कई वर्ष पहले कलकत्ता में भारत तथा विदेश के कई नामी-नामी पहलवान जमा हुए थे। फोर्ट विलियम किले में उनकी कुश्तियाँ हुईं। हारने-जीतने वालों के नामों का हमें पता नहीं है, पर तमाशबीनों में किंगकांग नामक एक हंगेरियन पहलवान की चर्चा वहाँ दो-चार दिन बनी रही।

उन्हीं दिनों गोरसिंह नामक एक पहलवान का फोटो, उसकी खुराक तथा उसके कुछ अंगों के नाप आदि का व्यौरा कलकत्ता के 'हिन्दुस्थान स्टैंडर्ड' में छपा था। उसमें उसे तन्दुरुस्ती का नमूना (Picture of Health) कहा गया था।

गोरसिंह की उम्र ३४ साल, लम्बाई ५ फुट १० इंच, वजन ४॥ मन, छाती ५७", कमर ५६", जाँघ ३६", तथा भुजा २१" और प्रतिदिन की खुराक २ सेर बादाम, १४-१५ सेर दूध, एक सेर घी और चार सेर आटे की रोटियाँ बतलाई गई हैं। काम अढ़ाई घंटे रोज कसरत करना-कराना और लगभग १२०० बैठक लगाना।

नमूना यह तन्दुरुस्ती का है या बीमारी का। हमें संक्षेप में तन्दुरुस्ती किसे कहना चाहिए, यह समझना जरूरी है। क्या तन्दुरुस्ती के लिए ज्यादा—यानी चार-पांच मन वजन होना, इतना अधिक खाना, घंटों लड़ते-लड़ाते रहना और दूसरों को लड़ने के लिए ललकारते फिरना जरूरी है ?

यदि मोटापे या वजन को तन्दुरुस्ती का गज माना जाय तो सारे मोटे और वजनी आदमियों को तन्दुरुस्ती का प्रमाण-पत्र देना पड़ जायगा, और बीमा कंपनियों ने मोटे आदमियों का बीमा न लेने का जो रिवाज बना रखा है उसे हमें बदलवाना पड़ेगा। अगर मोटा तन्दुरुस्त हो तो फिर बीमार किसे कहेंगे ? मोटापा बीमारियों का खजाना कहा जाता है और वास्तव में है भी।

पिछले दिनों दिल्ली में एक प्राकृतिक चिकित्सक एक व्यक्ति को सामने लाए, जिसका वजन उस समय ६॥ मन था और एक साल पहले ८ मन। उसका डेढ़ मन वजन इन्हीं चिकित्सक के उपचार से घट सका था।

दिल्ली में उस समय भीमावरम् (आन्ध्र के प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डा० राजू भी थे। उन प्राकृतिक चिकित्सक मित्र ने डा० राजू से प्रार्थना की कि इन पहलवानजी को आप दमे से मुक्त होने का और शीघ्र मोटापा दूर होने का कोई उपाय बतला सकें तो आपकी बड़ी कृपा होगी।

एक मित्र बीच में बोल पड़े, “शर्माजी, आप इनके लिए “पहलवान” शब्द का इस्तेमाल कैसे करते हैं ?”

“जन्म भर से यह पहलवानी का ही पेशा करते रहे हैं। आज भी दिल्ली में इनके सैकड़ों शागिर्द हैं।”

“इनके सैकड़ों शागिर्द होने की बात से मुझे क्या इन्कार होगा ? आपत्ति तो “पहलवान” शब्द का दुरुपयोग होते देखकर होती है।”

शर्माजी फिर बोले, “पहलवान को पहलवान न कहा जाय तो आप ही कहिए और क्या कहा जाय ?”

“पहलवान” दोस्त को भी जोश आ गया; बोले, “मैंने शरीर भारी पड़ जाने से और दमे की बीमारी की वजह से कई सालों से कुश्ती लड़ना छोड़ दिया है, लेकिन आज भी मैं किसी बड़े-से-बड़े मजबूत आदमी की कलाई पकड़ लूं तो वह मेरे हाथ से छुड़ाकर भाग नहीं सकता।”

डा० राजू पूरी हिन्दी समझ और बोल न पाने पर भी बोले, “माई, आपको कोई हाथ पकड़ने देगा तब तो। मेरे हाथ में आप एक हाथ भर की लकड़ी आने दीजिए, मैं आप जैसे दस को भी अपना वदन न छूने दूंगा, पकड़ना तो दूर रहा।”

इस पर वह तो चुप हो गया। पर शर्माजी उन मित्रों से बोले, “मुझे पहले आप यह बतलाइये कि मैंने “पहलवान” शब्द का दुरुपयोग कैसे किया ?”

“पहलवान शब्द के माने जानते हैं आप ?”

“यही कि जो कसरत करे, कुश्ती लड़ने का पेशा करे।”

“प्रचलित अर्थ तो जो आप कहते हैं वह यही है, लेकिन शब्दार्थ इसका कुछ और ही है। “पहलवान” यानी “पहलवाला”। “पहल” फ़ारसी के “पहलू” शब्द से बना है। जिसका कोष-अर्थ है “किसी ठोस वस्तु के कोनों के बीच की चौरस सतह।” जिसके शरीर के सब पहलू दुरुस्त यानी अंग-प्रत्यंग सानुपात हों उसी को पहलवान कहना चाहिए। आपने आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ चरक में देखा हो तो इसके लिए ‘सम शरीर’ शब्द वर्तित गया है। चरक और सुश्रुत में दीर्घायु पुरुष के लक्षणों में शरीर के सब अंगों का अनुपात कि कौन अंग कितना लम्बा और कितना मोटा होना चाहिए, बतलाया गया है। वह अनुपात केवल दीर्घायु का ही लक्षण नहीं, बल्कि स्वास्थ्य और सुन्दरता का द्योतक भी है। आप जिनके लिए पहलवान शब्द का प्रयोग कर रहे हैं उनके अंगों में कहीं कोई अनुपात देखते हैं आप ? यह तो ऐसे ही हैं कि मानो एक बड़ा-सा मांसपिंड रख कर उसमें हाथ-पैर जोड़ दिये गए हैं या कहिए आदमी की मूरत बना कर उस पर मिट्टी गूँद कर छोप दी गई है। कहाँ पहल है इनके शरीर में कि आप इन्हें पहलवान कहते हैं ? पहलवान के मानी होगा ‘सुडौल शरीर’, पर इन से बड़ा ‘वेडौल’ तो आप को तलाश करने से भी शायद न मिले।”

“आप ही इन्हें अब “सुडौल” होने का कोई उपाय बताइये।”

“इन्हें किसी खरादी के यहाँ भेजिये, वह “डौल” खराद कर इन्हें सुडौल करेगा। मैं तो कहता हूँ, बड़ा कमाल किया आपने, जो इन्हें डेढ़ साल में ८ मन से ६॥ मन पर ले आये। अच्छा, भला कहिए, यह खाते क्या हैं ?”

शर्माजी के “पहलवान” ने कहा, अब तो क्या खाता हूँ, भूख ही बन्द हो गई मेरी, दमे के मारे कुछ खाया ही नहीं जाता। पहले तो मैं दूध की बाल्टी उठाता और पी जाता, एक सेर बादामों की ठंडाई घोट कर पी जाना तो मेरे लिए मामूली बात थी।

“माई मेरे, उन्हीं सब का नतीजा है यह कि इस ३५ साल की उम्र में आपकी यह बुरी हालत हो गई है।”

कुछ थोड़ा-बहुत बता कर और यह कह कर कि आपको शर्माजी जो करा रहे हैं, वह ठीक है, उसे विदा किया गया।

आयुर्वेद के सिवा वर्तमान युग के विदेशी शरीर-विशेषज्ञों ने स्वस्थ और सुन्दर स्त्री-पुरुष के अंग-प्रत्यंग के लिये जो एक अनुमानिक अनुपात निश्चय किया है आगे हम उस पर कुछ विचार करना चाहते हैं।

पुरुषों के अंगों का अनुपात

आदर्श की दृष्टि से तो मनुष्य की गरदन, बाजू और पिंडलियां लपेट में एक नाप की होनी चाहिये। पर ऐसा देखा बहुत कम जाता है। साधारणतः उत्तम सम-शर के लिये यदि लम्बाई ५ फुट ७ इंच हो तो वजन १४५ पौंड यानी १॥॥ मन, गर्दन १४॥ इंच, भुजा ११॥॥ इंच, अग्रबाहु ११ इंच, छाती ३७॥॥ इंच, कमर ३०। इंच, पुट्टे ३६।, जांघ २०॥॥ इंच, पिंडली १४ इंच और टखना ८॥॥ इंच होना चाहिये।

स्त्रियों के लिये

५ फुट ४ इंच लंबाई के लिये वजन १२४ पौंड, गर्दन १२॥ इंच, भुजा ११ इंच, अग्रबाहु ९॥॥ इंच, छाती ३३॥ इंच, कमर २६॥ इंच, पुट्टे ३७ इंच, जांघ २२॥ इंच, पिंडली १३॥ इंच और टखने ८॥ इंच होने चाहिये।

गोरसिंह को तन्दुरुस्ती का नमूना होने के लिये ही नहीं बल्कि सुडौल शरीर होने के लिये भी ५ फुट १० इंच की लंबाई रखते हुए वजन में १८० पौंड से अधिक नहीं होना चाहिये। पर वहां तो वजन ३६४ पौंड है—पूरा दूना ! कमर छाती से एक चौथाई कम होनी चाहिए, यानी छाती अगर ५७ इंच है तो कमर ४३ इंच होनी चाहिये पर है वह ५६ इंच। जांघ कमर से आधे से कुछ अधिक यानी २३ इंच होनी चाहिए जब कि—३६ इंच है डेढ़ से भी अधिक ! भुजा छाती के एक तिहाई यानी १९ इंच होनी चाहिये और है २१ इंच।

यदि हमें अंगों के सही अनुपात की कल्पना है तो ऐसे शरीर को कभी हम पहलवान मानने की भूल न करेंगे।

शक्ति

स्वस्थ कहलाने के लिये मनुष्य में कितनी ताकत होनी चाहिये ? भैसे जितनी, बैल जितनी अथवा ऐंजिन के हिसाब से एक घोड़े जितनी या दो घोड़े जितनी—कितना ?

जैसे अंग-प्रत्यंग की लंबाई और लपेट का (girth) अनुपात ग्रन्थों में लिखा है शक्ति का अनुपात लिखा नहीं पाया जाता। मेरा ख्याल है ऐसा अनुपात निश्चय करना संभव ही नहीं है।

शक्ति के सम्बन्ध में हम एक दूसरी दृष्टि से यहां विचार करना चाहते हैं। मानिये, किसी एक आदमी में किसी एक काम के लिए साधारण बीस आदमियों के बराबर शक्ति है, पर समाज के लिये उसका उपयोग देखना चाहिये। यदि कोई एक आदमी के जितना खाकर बीस आदमियों के बराबर काम कर सके तो वह समाज के लिये अवश्य उपयोगी सिद्ध होगा, पर बीस आदमियों की खुराक खाकर अगर काम एक के जितना भी न करे, व्यर्थ काम करे अथवा शक्ति का व्यर्थ प्रदर्शन करता फिरे तो उस शक्ति से लाभ क्या है? समाज के अन्य अंगों को लड़ने के लिये ललकारने को शक्ति—“शक्तिः परेषां परिपीडनाय।”

किसी मल्ल की शक्ति का समाज के लिये क्या सदुपयोग है? लड़ना-लड़ाना, डंड-बैठक मारना और आवारा घूमना यह तो कोई काम में काम नहीं है।

तन्दुरुस्ती और खुराक

अब हम गोरसिंह की खुराक पर विचार करें। २ सेर बादाम, १३-१४ सेर दूध, एक सेर घी, ४ सेर आटा। इतना खाकर यह व्यक्ति अपना क्या बनाता है और क्या दूसरों का? देहाती दो महीने में इतने मूल्य का सामान नहीं खाता है और बदले में इससे दूने दाम का अन्न उपजाता है। डेढ़-दो रुपये रोज की खुराक पर बसर करके लगातार आठ घंटे २॥ मन के बोरे पीठ पर उठाने और रखने का काम करते हुए मजदूरों को देखा जाता है। गोरसिंह की खुराक वाले आदमी का काम क्या है? ‘अधिक अन्न उपजाओ’ आन्दोलन क्या ऐसे लोगों को खिलाने के लिये है?

स्वास्थ्य अथवा स्वार्थ की दृष्टि से भी इतना खाकर यह आदमी समाज के साथ शत्रुता करने के अलावा अपनी हानि भी करता है। मल्लों को लंबी ज़िन्दगी पाते प्रायः नहीं देखा जाता है। उम्र बढ़ने पर वे प्रायः एक-न-एक बीमारी में फँसे रहते हैं। पेट में डाल लेने पर भी कोई इतना खाना पचा नहीं सकता—अंग नहीं लगा सकता, खुराक का अधिक भाग पाखाने में अनपचा ही जाता है। उस दिन एक निदान-शास्त्री (पैथोलॉजिस्ट) बतला रहे थे कि उन्होंने अब तक हजारों के मल की जांच करके देखा है कि अधिकतर मनुष्यों के पाखाने में खुराक का एक बड़ा भाग अनपचा आता है। फिर इतना अधिक खाने वालों के पाखाने में अनपचा आने में तो शक ही क्या है? उतनी ताकत या उतनी मेहनत के लिए भी उतना खाना गैर-ज़रूरी है। आठ घंटा लगातार फावड़ा चलाने वाले को अधिक-से-अधिक चार-पांच हजार कैलोरी की आवश्यकता होती है—जो उसे कभी मिलती नहीं है। पर यह गोरसिंह की खुराक की कैलोरी तो तीस-बत्तीस हजार बैठती है। भोजन शास्त्र की दृष्टि से यह खुराक इस व्यक्ति के लिए छह गुनी से भी अधिक है और उसी का यह नतीजा है कि शरीर में जगह-जगह व्यर्थ चरबी जमा हो गई है। कूने की भाषा में कहें तो यह दोष-संचय (Foreign matter) है, जो आगे-पीछे निश्चित रूप से अनेक स्थायी रोगों का कारण बनता है।

किंगकांग की खुराक

अधिक खुराक का दूसरा उदाहरण उपर्युक्त हंगेरियन पहलवान किंगकांग है ।
 सुबह का नाश्ता—नमक मिर्च मिलाकर (सिर्फ) ३६ अंडे ।
 दोपहर का भोजन—(सिर्फ) ६ मुर्गे, आध सेर मक्खन और २॥-३ सेर फल ।
 तीसरे पहर—फलों का रस १ सेर ।
 रात को तीन वत्तख और १ सेर फल ।
 और दिन भर में (सिर्फ) पाँच सेर दूध ।
 प्राचीन काल के राक्षस इससे ज्यादा क्या खाते रहे होंगे !

कहते हैं कि कुम्भकर्ण के अधिक खाने से संसार की हानि होते देखकर उसे शाप मिला था कि छह महीने सोए और एक दिन उठे और खा-पीकर फिर छह महीने के लिये सो जाय ! ऐसा शाप न पाता तो वह खा-खाकर दुनिया का सफ़ाया कर देता । पर अफसोस है कि कुम्भकर्ण के इन वंशजों के लिये ब्रह्माजी की ओर से कोई ऐसी व्यवस्था नहीं हुई है ।

स्वस्थ मनुष्य की परिभाषा

यों तो ग्रंथों में स्वास्थ्य की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं मिलती हैं, लेकिन आयु-वेद की एक सुन्दर परिभाषा है:—“प्रसन्नात्मेन्द्रियमना स्वस्थ इत्यभिधीयते”—आत्मा, इन्द्रिय और मन की प्रसन्नता को स्वास्थ्य कहते हैं । अंग्रेजी में Sound mind in a Sound Body यानी स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का निवास स्वास्थ्य का चिह्न बतलाया है । पर ये दोनों परिभाषायें सूक्ष्म होने के कारण सर्व-साधारण इन्हें पूरी तरह शायद न समझ सकें । नीचे मैं गांधीजी की बतलाई हुई स्वास्थ्य की एक साधारण परिभाषा (“आरोग्य की कुंजी” में से) देकर इस लेख को समाप्त करूँगा ।

१. जिसके शरीर में कोई रोग नहीं है ।
२. जो बिना थकान के रोज दस-बारह मील चल सकता है ।
३. बिना थकान के साधारण मेहनत-मजदूरी के काम कर सकता है ।
४. साधारण खुराक पचा सकता है ।
५. जिसकी इंद्रियाँ और मन स्वस्थ हैं ।

इसी सिलसिले में गांधीजी आगे कहते हैं कि “इस व्याख्या में मल्ल (पहलवान) या बहुत भाग-कूदवाला नहीं आ सकता । जो लोग इस प्रकार असाधारण शक्ति का प्रदर्शन करते हैं उनका रोग-ग्रस्त होना सम्भव है । शरीर के वैसे विकास को एकांगी माना जायगा ।”

आशा है यह लेख स्वास्थ्य के संबंध में सही दृष्टि बनाने में पाठकों की मदद करेगा ।

अनुभूमिका

योग का मार्ग

—स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक

योग क्या है ? उसके क्या रहस्य हैं और क्या वास्तविकता हैं ? इन सबका ज्ञान लेख पढ़ने पर पाठक को हो जाना निश्चित है । लेखक ने गन्ध-तन्मात्रा के अनुभव तथा वशीकार से लेकर ब्रह्मसमाधि पर्यन्त सभी प्रकारों को दर्शाया है ।

—सम्पादक

योग के सम्बन्ध में मैंने अच्छे-अच्छे हठयोगियों के मुख से सुना कि इस विषय में पातञ्जल योग से अधिक उत्तम मार्ग अन्य कोई नहीं है । अतएव मैंने पातञ्जल योग-पद्धति का क्रियात्मक अनुसंधान करना निश्चय किया, एवं दृष्टिबन्ध (Sightism) अन्तरावेश (Spiritualism) सम्मोहन (Mesmerism) और वशीकरण (Hypnotism) को भी योग की शाखा समझ कर क्रियात्मक रूप में सीखा परन्तु पता लगा कि उक्त चारों बातें भी पातञ्जल योग के साथ सम्बन्ध नहीं रखती हैं और न ही योग की क्रियाएं कही जा सकती हैं, प्रत्युत मन की भ्रान्त स्थिति में इनके प्रयोग किये जाते हैं । किन्तु योग शान्त स्थिति में होता है, अतएव योग के अभ्यास में उक्त बातें त्याज्य ही हैं । किसी अन्य प्रकार से भी मानसिक शक्ति का ह्रास करके शून्यता का अवलम्बन कर मनोमूढ़ बनना उचित नहीं है । किन्तु योग के सिद्धान्त में क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, इन तीन अवस्थाओं में योग नहीं माना जाता है, परन्तु एकाग्रता और निरोध (सर्व निरोध) इन दो अवस्थाओं को ही योग की भूमियाँ कहा है । जो कि “श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्” (योग दर्शन १।२०) श्रद्धा, वीर्य (उत्साह), स्मृति, समाधि (एकाग्र समाधि) और प्रज्ञा (ऋत-म्भरा प्रज्ञा) के साथ-साथ अनुभव में आती हैं ।

एकाग्रता के सभी अनुभव योग में उपदेय नहीं हैं, क्योंकि एकाग्रता के अन्दर चार प्रकार के अनुभव होते हैं, जो कि प्राभाविक, काल्पनिक, सांस्कारिक, भौमिक नाम से कहे जाते हैं जिनका विवरण निम्न प्रकार है—

प्राभाविक—दृष्टिबन्ध (Sightism) अन्तरावेश (Spiritualism) सम्मोहन (Mesmerism) और वशीकरण (Hypnotism) के अनुभव प्राभाविक हैं, क्योंकि इनमें प्रयोजक का प्रभाव काम करता है । उदाहरण के लिये दृष्टिबन्ध (Sightism) में “किसी एक १०-१२ वर्ष के लड़के के अंगूठे के नाखून पर स्याही या तेल लगाकर उसको कहें कि तुम लगातार, टकटकी लगाकर उसमें देखते रहो, कुछ देर के पश्चात् तुम्हें इसके अंदर एक बगीचा दिखलाई पड़ेगा; तभी तुम मुझसे कह देना । इतना कहने पर लड़के का मन देखते जब एकाग्र हो जावेगा, तब आपके बगीचा दीखने के कहे हुए शब्दों का प्रभाव उस पर पड़ेगा और वह लड़का कहेगा कि मुझे बगीचा दिखलाई पड़ने लगा । तब आप कहें, देखो, इसके अन्दर कोई मैदान है, लड़का कहेगा हां दीखता है, फिर उस को कहो इस मैदान के साफ करने के लिये कोई भंगी आवे, और लड़के से पूछो, कोई भंगी आया ? लड़का कहेगा आ रहा है या आ गया, और साफ कर रहा है । इसी प्रकार

कहो कि कोई दरी बिछाने वाला आवे, और दरी बिछा जावे, तथा कुर्सी, टेबल, लगा जावे, फिर कहो कि यहां ऋषि दयानन्द पधारें, लड़के से उनकी नमस्ते कराओ और इधर-उधर के प्रश्न जो चाहे पुछवाओ, उनके उत्तर बोर्ड पर लिखवाने आदि के द्वारा लो। इस प्रकार न केवल दयानन्द ही किन्तु, हनुमान्, रामचन्द्र या कल्पित जिन, भूत आदि किसी को भी दिखला सकते हो। यह सब एकाग्रता का अनुभव है, परन्तु प्राभाविक है। प्रयोजक के प्रभाव से लड़के ने अनुभव किया, केवल एकाग्रता के कारण यह उपादेय नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार यह दृष्टिबन्ध (Sightism) काले नग वाली अंगूठी जो कि बाजार में भूतों की अंगूठी के नाम से मिलती है। काले दर्पण से भी प्रयोग किये जाते हैं। इसका नाम त्रिकालदर्शक दर्पण है। यह तो दृष्टिबन्ध (Sightism) का अनुभव है। एवं टेबल और प्लेञ्चट आदि साधनों के द्वारा अंतरावेश (Spiritualism) तथा सम्मोहन (Mesmerism) और वशीकरण (Hypnotism) के प्रयोग भी एकाग्रता में प्राभाविक हैं।

काल्पनिक—एकाग्रता में कल्पना द्वारा जो अनुभव होता है वह काल्पनिक है। मन की एकाग्रता हो जाने पर हृदय आदि स्थानों में बांसुरी बजाते हुए कृष्ण, मुग्धर उठाये हुए हनुमान्, सीता के साथ राम, काले भयंकर भैरव, तथा कमल आदि पुष्प की कल्पना करते रहने से उनका काल्पनिक अनुभव हो जाता है। वास्तव में हृदय के अन्दर इन वस्तुओं की विद्यमानता नहीं है, परन्तु उनका कल्पना से मान होने लगता है।

सांस्कारिक—एकाग्र मन में किसी संस्कार के उदित हो जाने से जो अनुभव होने लगता है, वह सांस्कारिक है। एकाग्रचित्त-व्यक्ति के सम्मुख किसी बाहर या भीतर की क्रिया या वस्तु से उसके मन में संस्कार उत्पन्न हो जाता है। अनुपस्थित या मृत किसी प्रियजन के सम्बन्ध में संस्कार आकर उसकी विविध लम्बी गाथाओं का अनुभव होन लगता है। इसी प्रकार अन्य सांसारिक विषयों का भी किसी निमित्त से सांस्कारिक अनुभव हो जाया करता है।

भौमिक—एक भूमि से दूसरी भूमि और दूसरी से तीसरी, तीसरी से चौथी इत्यादि क्रम करके योग के ग्राह्य-ग्रहण-ग्रहीतृमार्ग द्वारा प्राप्त हुआ अनुभव भौमिक है। इसमें मन स्वयं ही कार्य-कारण के अनुक्रम से आगे चलता हुआ अन्तिम अधिष्ठान तक पहुंच जाता है और पुनः अपनी वृत्ति को समाप्त कर देता है एवं आत्म-साक्षात्कार या ब्रह्मसाक्षात्कार अथवा ब्रह्म समाधि का चरम फल प्राप्त होता है। यही वास्तव में योग में उपादेय है।

कुछ एक मनुष्य स्थानिक अभ्यास ही करते हैं। भूकुटी आदि स्थल पर मनको रखकर ध्यान किया करते हैं। वे यह नहीं जानते कि मन का स्वभाव है कि जिधर उस को लगाया जावे वह उस अभ्यास में परिचय करके आगे भूमियों में बढ़ना चाहता है परन्तु स्थानिक अभ्यास में भूमियां न मिलने से प्रथम थकावट पैदा कर देता है। फिर भी यदि मन को वहां से न हटाया जावे तो वह मूढ़ बनकर निद्रा को उत्पन्न करता है और फिर भी न हटाया जावे तो अण्डबण्ड स्मृतियों में चला जाता है। इस प्रकार योग नहीं होता है किन्तु निद्रा और स्मृति वृत्तियों के प्रभाव में आ जाता है। स्थानिक अभ्यास की उतनी ही आवश्यकता है जितनी में मन दश-पन्द्रह मिनट तक स्थिरता प्राप्त कर सके, पुनः “तस्य भूमिषु विनियोगः” उस संयमित मनको ग्राह्य आदि भूमियों में ले जाना चाहिये। अस्तु। इत्यादि कारणों से ही इस पुस्तक में उक्त मार्गों का स्पष्टीकरण किया गया है। आशा है स्वाध्यायी तथा अभ्यासी महानुभाव स्वयं अभ्यास द्वारा इस पातञ्जल योगमार्ग का अधिकाधिक क्रियात्मक अनुसंधान करेंगे।

अद्भुत और प्राचीन

योग का मार्ग

प्रवेश

सांसारिक सुखभोग के लिए मनुष्य जब विविध प्रयास करके श्रान्त हो जाता है या उक्त सुखभोग से जब थोड़ा बहुत उसका मन भी तृप्त हो चुकता है तब वह किसी एक विरामरूप विश्राम का आश्रय लेना चाहता है या उस सुखभोग से भिन्न किसी शान्तिमय सुख की ओर उसकी मानसिक धारा हो जाती है। मव्य जीवन और भक्तजन में यह धारा आभ्युदयिक कर्मों के साथ-साथ ही प्रकट हो जाया करती है।

शास्त्रों के अध्ययन और महात्माओं के उपदेश से यह निश्चय हो जाता है कि उक्त निवृत्तिमय आराम तथा शान्तसुख का आधार विश्वात्मा सर्वान्तर्यामी आनन्दधन जगदीश देव है। तब उस प्रभु परमात्मदेव के सम्बन्ध में जहां-तहां सत्संग द्वारा श्रवण करता है, श्रवण के अनन्तर मनन अर्थात् विचार से स्वात्मा में उसका पूर्ण विश्वास होकर आस्तिक-बुद्धि का विकास हो जाता है तत्पश्चात् निदिध्यासन अर्थात् अपने आन्तरिक या आत्मिक प्रयत्न से उस आनन्दमूर्ति या शान्तिप्रद सर्वज्ञ जगदीशदेव के साथ समागम करता है। “आत्मनात्मानमभिसंविवेश” यही वेद का सिद्धान्त है। इस आत्मत्वसम्पादनरूप निदिध्यासन का नाम योगाभ्यास है। ब्रह्मोपासना का एक मात्र साधन योगाभ्यास ही है, यह सिद्धान्त सर्वतन्त्र-सम्मत है। अतएव सभी महात्मा हमको प्रभु-सत्संग के लिए योगाभ्यास का ही उपदेश देते हैं।

चित्त की वृत्तियों के रोकने या वश करने का नाम योग है, सभी वृत्तियों को रोककर सर्वनिरोध-सम्पादन करना या कुछ वृत्तियों को रोककर एकाग्रता प्राप्त करना दोनों ही योग हैं। प्रथम एकाग्रयोग और पश्चात् सर्वनिरोध योग किया जाता है, इन दोनों ही के सम्पादानार्थ निरन्तर यज्ञ करने का नाम अभ्यास या योगाभ्यास है। उक्त योगसिद्धि के लिए ‘ग्राह्यमार्ग’ (बाह्य वस्तुओं के द्वारा समाधि-भूमियों पर चलना), ग्रहणमार्ग (आन्तरिक पदार्थों के द्वारा समाधि-भूमियों का प्राप्त करना), ग्रहीतृमार्ग (श्रोङ्कारोपासना से स्वात्मालम्बन के द्वारा समाधि-भूमियों का अनुभव करना) ये तीन मार्ग हैं।

मनोविज्ञान और आत्मविज्ञान के भेद से योग के दो क्षेत्र हैं। एकाग्र या सालम्बन योग-भूमियों का अनुभव तथा विभूतियों अर्थात् सिद्धियों की प्राप्ति मन पर निर्भर है क्योंकि उक्त सभी योगभूमियों या सिद्धियों में मन की एकाग्रता आवश्यक है। इस एकाग्रसमाधि में मन के सम्मुख किसी भी एक वस्तु का आलम्बन होना अनिवार्य है चाहे वह वस्तु स्थूल हो या सूक्ष्म। तब वह एकाग्र समाधि,

सालम्बन सवस्तुक समाधि, सम्प्रज्ञात समाधि और सजीव समाधि कही जाती है। यही मनोविज्ञान का क्षेत्र है। इसके उपरान्त निरोध समाधि, निरालम्बन समाधि, निर्वस्तुक समाधि, असम्प्रज्ञात समाधि और निर्बीज समाधि के नाम से कही जाती है जो कि आत्म-विज्ञान का क्षेत्र है। इसी में परम शान्ति प्राप्त होती है। क्योंकि मन की पांच भूमियां हैं “क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तमेकाग्रं निरुद्धमिति चित्त-भूमयः” (योग० १।१ पर व्यास) (१) चंचलता (२) मूढ़ता, प्रमत्त के समान मोह-ग्रस्तता, अज्ञानता (३) बाधितावस्था (४) एकाग्रता (५) निरोध। एकाग्रता और निरोध योग की भूमियां हैं किन्तु विक्षिप्त अर्थात् भय या दुःख से बाधित हो सब कुछ छोड़कर बाधा में ही संलग्न रहना योग की समाधि नहीं है क्योंकि वह प्रयत्न से सिद्ध नहीं की गई परन्तु विक्षेप के कारण गौण है। अस्तु।

जिस प्रकार सांसारिक कार्यों की सफलता, उचित तथा नियमित दिनचर्या पर निर्भर है, एवं प्रत्येक योगभूमि का सेवन करने के लिए यम और नियम का आचरण करना अत्यावश्यक है। यद्यपि योगदर्शन और अन्य शास्त्रों में इनका विवरण दिया भी है तथापि प्रसंगतः संक्षेप में यहां भी संकेत कर दिया जाता है—

(१) अहिंसा—मन, वाणी और कर्म से वैरवर्तन का त्याग।

(२) सत्य—मन, वाणी और कर्म से सत्य का सेवन अर्थात् सत्य विचार, सत्य भाषण और सत्य कर्म करना।

(३) अस्तेय—पर धन का अपहरण (चुराना आदि) न करना।

(४) ब्रह्मचर्य—गुप्तेन्द्रिय का संयम।

(५) अपरिग्रह—त्याग भाव से वर्तना।

ये पांच यम कहलाते हैं।

(१) शौच—शरीर, अन्न, वस्त्र और स्थान की शुद्धि।

(२) सन्तोष—कार्य करते रहना और फल पर सन्तोष रखना।

(३) तप—निज लक्ष्य, स्वकर्तव्य और धर्मानुष्ठान का कष्ट आने पर भी न त्यागना, उसके लिये सदा निरालसी होकर पुरुषार्थ करते रहना।

(४) स्वाध्याय—धर्म शास्त्रों का अध्ययन।

(५) ईश्वरप्रणिधान—सर्व प्रकार से अपने आपको ईश्वर के अर्पण करके उपासना मार्ग पर चलना।

ये पांच नियम हैं। इन यमों और नियमों का सेवन सदा करते रहना चाहिये।

अस्तु।

प्रतिबोध

अनेक मनुष्य संसार में ऐसे देखने में आते हैं कि जिनके पास धन तो अत्यधिक है परन्तु पुत्रादि कामनारूप घोर ताप में नवतन्त्रिंश अत्यन्त दुःखित रहते हैं। कतिपय जन ऐसे मिलते हैं कि जिनके पुत्र आदि परिवार तो पर्याप्त है किन्तु दरिद्रता के कारण सब परिवार बुभुक्षा-पीडित दुःखमय जीवन काटता है। कुछ एक महाशय परिवार भी रखते हैं धन से भी पूर्ण हैं पर अज्ञान और मूर्खता के वश परस्पर उपद्रव, लड़ाई-झगड़े

करते रहने से व्याकुल हो न्याय-मन्दिरों में ठोकरें खाते हुए दुःखमय जीवन बना बैठते हैं। बहुतेरे जन सब कुछ ऐश्वर्य रखते हुए भी रोगों के ग्रास बन कर अत्यन्त तापित हैं। अनेक ऐसे महानुभाव हैं जो पढ़ लिखकर भी उदासीन, चिन्ताग्रस्त, विक्षिप्त और अशान्त हुए मस्तिष्क से शुष्क चक्की-सी पीसते रहते हैं, स्वप्न में भी शान्ति की नींद नहीं सोते। एवं संसार को दुःखमय देखकर ठण्डी सांस आती है और विचार उत्पन्न होता है कि इस प्रपंच से कोई विरला जन ही अलग होगा जिसने इस संसार और इसके हेतु को समझ लिया हो और वास्तव में वही जन इस भवसागर से तर कर शान्तिभूमि में विराजित होगा।

२—दूसरी ओर जब मानुषी सृष्टि से पृथक् होकर दैवी पर दृष्टिपात करते हैं तब विचित्र प्रकार की औषधियां जो मृतकल्प को क्षण भर में जीवित कर दें और हृष्ट-पुष्ट बलिष्ठ जीवित जागृत को मृत्यु के मुख में पहुंचा दें तथा अनेक प्रकार के फली वृक्ष जिनके फल आदि के सेवन से अल्पकाल में ही मनुष्य भूमि और आकाश के अन्तर से उच्च व नीच अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। नानाविध प्राणी चटका, तोता, मैना, बगुला, मयूर, गौ, घोड़ा, भेड़, बकरी, महिष, हाथी, ऊँट, सिंह, गीछ, गेंडा, बन्दर और मनुष्य तथा सरित् सागर, जंगल, भुण्ड, मैदान, ऊँचे-ऊँचे पर्वतों से युक्त पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, तारागण का व्यूह किसी नियमित परिस्थिति और शासन में वर्तमान है। हिममय पर्वतों पर चढ़ कर चारों ओर दृष्टि डालने से हिम की सुन्दर श्वेतता और निर्मलता का चित्र सामने खिच जाता है और साथ में नीचे दृष्टि करने पर भयंकर मृत्युग्राह का दर्शन होता है, उसी समय पूर्वोक्त इस दैवी सृष्टि के परिचय के साथ अपने शरीर रूपी बन्दी घर का बोध होता है। और तत्काल ही किसी असीम शक्ति वाले नियन्ता सम्राट् जगदीश देव की यह सब लीला है, महिमा है, ऐसी भासना और भावना होकर उसके सदाश्रय और समागम के लिए योगाभ्यास सीखने की इच्छा होती है क्योंकि शरीर रूपी बन्दीघर छूटकर अव्याहत गति अर्थात् आत्मिक स्वतंत्रता से विचरने और अंतर्दामी देव के साथ समागम से चिरकालीन शान्ति को प्राप्त करना मनुष्य का ध्येय है। वस्तुतः पुरुष का पुरुषत्व भी इसी पर निर्भर है। अन्यथा गर्भ के अनेक दुःखों को भोगकर जन्म के तापों का सहना, सुवर्णकार की यन्त्री में से तार के समान तंग योनिस्थान में से बाहर खींचा जाना, संसार में अनेक आपत्तियों और क्लेशों को सहते हुए जीवन का स्थिर रखना, अनेक विध प्रपंचों की चक्की पीसते हुए कलहों तथा उपद्रवों में बारम्बार, फँसना मरने से पूर्व वृद्धावस्था किंवा रुग्णावस्था के दुःखों को भोगना और अन्त में मृत्युरूपी अनन्त दुःखमय ग्राह का ग्रास बनना पशु-पक्षियों से कोई विशेष नहीं है और न ही विचारशील मनुष्य की दृष्टि में इससे अधिक जीवनोद्देश्य की घातक कोई अन्य नीच वृत्ति है। अतएव ब्रह्मपरायण जीवन का बनाना मनुष्य जन्म का साफल्य है।

स्मर्तव्य

१—अध्यात्म-विद्या को सर्वोपरि विद्या और मानवजन्म का मुख्य लक्ष्य मानना चाहिए। इसलिये अध्यात्मविद्या से अपने आप को कृतकृत्य करने का निश्चय कर लेना चाहिए।

२—यदि संसार के भोग-विलासों में कुछ सुख हो तो वह सब इस संसार के आधाररूप विश्वात्मा जगदीश देव के प्रताप से ही है और वस्तुतः सुखपुंज या आनन्द-

घन परमात्मदेव ही है। उसी के प्रभाव से संसार की वस्तुओं में सुख का लेश है। अतः उस ब्रह्मदेव के सत्संग को पूर्ण शान्ति और सुखों का हेतु समझना चाहिये। इस लिये उसके साथ पूर्ण अनुराग आवश्यक है।

३—निःसन्देह अभ्यास के समय अभ्यास कार्य को सब कार्यों से मुख्य समझ कर इसका निरन्तर और पर्याप्त समय तक सेवन करना उचित है।

४—परमात्म-सत्संग के हेतुओं का मान और विपरीत बातों का सदा अपमान करते हुए अन्य मान और अपमान को भुला देना अभ्यासी का कर्तव्य है।

५—यथामम्मव काम, क्रोध, आदि से अलग रहना चाहिये। अवसर-अवसर पर महात्माओं की शिक्षा और संकेतों से अपने को कमलपत्र की न्याईं सम्पर्क-रहित बनने का सदा यत्न करते रहना चाहिये।

६—सबसे यथायोग्य प्रेमपूर्वक और निष्पक्ष वर्तना तथा साधु महानुभावों की सेवा सत्संग करते हुए अन्यथा आचरण से बचना चाहिये।

७—निःसन्देह अपनी उन्नति के साथ-साथ दूसरों की उन्नति करने में प्रसन्नता तथा दूसरों की उन्नति समझना श्रेयस्कर है।

८—पूजनीय महानुभावों के सम्मुख नम्र रहना अत्यावश्यक है क्योंकि बिना नम्रता के परमात्मदेव को ओर भुक्ता तथा निज समर्पण होना असम्भव है।

९—किसी दूर्यसन के ज्ञात होते ही निःशंक उससे दूर हो जाना चाहिये क्योंकि जान-बूझकर उसमें फंसे रहना आत्म-हत्या है और आत्म-हत्या से प्रभुदेव के साथ सहयोग होना कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव है।

१०—अभ्यास का आरम्भ स्वस्थावस्था में प्रसन्नता के साथ करना चाहिये। अस्तु।

प्राचीन काल में योग-विद्या का प्रचार विशेष था पर अब अनेक संसार प्रवाहों के कारण इसका लोप-सा ही नहीं किन्तु इसके बहाने से अनेक नवीन अण्ड-वण्ड क्रियाएँ और ढोंग चल पड़े हैं जिनसे लोगों को बड़ी हानि पहुंची है। परन्तु यहां, अध्यात्म-विद्या की उस प्राचीन पद्धति को जो कि वेद, उपनिषद् और पातञ्जल योग में वर्णित है और जिसका आचरण ऋषि-मुनि किया करते थे तथा वर्तमान में भी उच्च साधु-महात्मा करते हैं, उसी का स्वरूप उपस्थित किया जाता है।

ग्राह्य मार्ग का अभ्यास

शौच, स्नान आदि से निवृत्त होकर शुद्ध एकान्त स्थान में किसी भी अनुकूल आसन से बैठ जावें चाहे वह मिट्टासन, पद्मासन, स्वस्तिकासन या स्थिरसुखामन हो। प्रत्येक आसन में केवल इस बात का ध्यान रखना कि शरीरांग अकड़े हुए न हों, किन्तु आसन के आधार पर सीधे बैठ कर बाहर भीतर के अंगों में शिथिलता बनानी चाहिये। मेरुदण्ड अर्थात् कमर न झुकना, किन्तु सारे शरीर का भार गुदास्थल पर रखा हो। इस प्रकार आसन लगाकर मन को निर्विचार बनाने का अभ्यास करना चाहिये। अर्थात् मन के अन्दर जो भी विचार आवे, तत्क्षण उस विचार को हटाना अथवा मन

को उससे अलग करना । इसी प्रकार जब दूसरा विचार आवे, तो फिर उसको धकेलना और मन को उससे अलग करना । एवं जैसे-जैसे विचार आते जावें, तैसे-तैसे उनसे मन को हटाते रहना । ऐसा करने से मन के संकल्प विकल्पों पर अधिकार होकर मन स्वाधीन और स्थिर होने लगेगा । अथवा इस निमित्त 'ओ३म्' की जपध्वनि करनी चाहिये या मन में पन्द्रह मिनट तक लगातार ऐसे उपाय का अवलम्बन करना चाहिये कि मन को क्षणभर का भी अवसर इधर उधर जाने का न मिले । अथवा दोनों कानों को उँगलियों से बन्द करके अन्तर्ध्वनि जो प्रतीत होती है उसके ऊपर मन को छोड़ देना अर्थात् उस ध्वनि पर लगाये रखना । इस प्रकार इन तीनों में से किसी एक को दस मिनट तक करके तीन प्राणायाम करना । प्राणायाम की विधि में ज्ञातव्य यही है कि प्राणायाम चार प्रकार का होता है । परन्तु प्रथम प्रथम तो केवल बाह्य प्राणायाम का ही सेवन करना है अतएव इसी का प्रकार लिखता हूँ ।

पूर्वोक्त आसन लगा कर भीतर के श्वास को नासिका के दोनों छिद्रों द्वारा वेग और बल के साथ इस प्रकार फेंको जैसे कि अति वेग और बल से वमन (उलटी—कय) हुआ करती है । अर्थात् साधारण श्वास की अपेक्षा प्राणायाम के समय भीतर के श्वास को इस प्रकार बाहर फेंकने का यत्न करना कि मानो भीतर का श्वास नीचे भूमि आदि स्थल को टक्कर मारे या स्पर्श करे । जैसे अधिक आगे कूदनेके लिए कूदने वाले को कुछ पीछे दौड़ कर जाना होता है, एवं भीतर के श्वास को बाहर बल और वेग से फेंकने के लिये मूलेन्द्रिय (गुदा स्थान) का उपर को संकोच इस प्रकार करे, जैसे किसी सभा आदि में बैठे हुए एकाएक शौचप्रवृत्ति (हाजत) को रोकने के लिये गुदा का उपर संकोच करते हैं । ऐसा करने से भीतर का पूर्ण श्वास बाहर वेग और बल के साथ निकल सकेगा, पुनः निकले हुए श्वास को गुदा के संकोच के साथ बाहर ही रोके रखें । जब धबराहट प्रतीत हो, तब धीरे-धीरे पूर्ण श्वास अन्दर ले लेवें, यह एक प्राणायाम हुआ । पुनः उस लिये हुए श्वास को अन्दर न रोकें किन्तु तत्काल ही बाहर फेंककर बाहर ही रोक दें । इस प्रकार तीन प्राणायाम करने चाहिये ।

गन्धतन्मात्रा को वश में करना

उक्त प्राणायाम आदि की विधि को दोनों समय यदि किया जावे, तो तीन दिन पर्याप्त हैं, यदि एक समय करना हो तो एक सप्ताह तक यह विधि करनी चाहिये । किन्तु दोनों समय ही करना अधिक उपयोगी है । पुनः चौथे दिन पूर्वोक्त शौचादि नित्य-कर्म से निवृत्त हो और आसन प्राणायाम करके देशी कपूर को आधे मिनट के लिए इस प्रकार सूँघे कि मन से नासिका इन्द्रिय में उस कपूर की गन्ध का निश्चय करे कि यह कैसी गन्ध है ? नासिका की आन्तरिक त्वचा (भीतर की खाल) में किस प्रकार स्पर्श करती है ? लगभग आधी मिनट सूँघ कर उस कपूर को दूर हटा दे और दो मिनट तक मन को नासिका में रखते हुए उस गन्ध का स्मरण करे । आध, पौन मिनट तक उसकी कुछ-कुछ स्मृति आवेगी । फिर उसी प्रकार आधे मिनट के लिए कपूर को सूँघे और हटाकर दो मिनट तक याद करे । इस प्रकार चार बार यही क्रिया करे । और सबसे पीछे चौथी बार सूँघ दो मिनट की अपेक्षा पांच मिनट तक याद करता रहे । पश्चात् उठ जावे और उठने के साथ ही कपूर को जरा सूँघ कर इधर-उधर शान्ति से कुछ टहले, टहलते हुए मन को कपूर-गन्ध के सस्कार में लगाये रखे । यह क्रिया दोनों समय करनी चाहिये । दूसरे दिन कपूर को तीन बार सूँघना और तीन-तीन मिनट के अन्तर से याद करना । अन्त में दस मिनट तक याद करते रहना । तीसरे दिन दो बार

सूँघना और पांच मिनट के अन्तर से याद करना और अंत में पन्द्रह मिनट तक याद करना । चतुर्थ दिन केवल एक बार सूँघना और बीस मिनट तक याद करना । पांचवें दिन अभ्यास से घण्टा या डेढ़ घंटा पहले सूँघना और २५ मिनट याद करना । पांचवें दिन भी सायंकाल चार या पांच घंटे पहले सूँघना और आध घंटे तक याद करने का अभ्यास करना । अब आगे कपूर को सूँघने की आवश्यकता नहीं है । छठे दिन प्रातः समय बिना गन्धाश्रय के ही ३५ मिनट तक अभ्यास करना । अभ्यास से उठते समय गन्ध केवल पांच दिन तक ही सूँघनी चाहिये, पश्चात् नहीं ।

२—प्रथम दिन सारी नासिका में मन को रखते हुए अभ्यास करें । दूसरे दिन नासिका के जिम भाग के अन्दर विशेष गन्ध प्रतीत हो अर्थात् नासिका नोक से लेकर जड़ तक की ओर जो कि ऊपर की प्रणाली है उस पर मन को रखते हुए सुगन्ध का अनुभव करें । तीसरे दिन उस प्रणाली के द्वारा गन्ध की अन्तिम टक्कर ऊपर मस्तिष्क स्थान में जहाँ लगे, वहाँ पर मन को रखते हुए गन्ध का अभ्यास करें, साथ में नासिका के ग्रहण द्वार से गन्धानुभव कर पुनः सीधा नासिका के ऊपर की ओर भीतर के अन्तिम केन्द्र पर मन को रखते हुए अभ्यास करना चाहिये । चतुर्थ दिन केवल केन्द्र में ही मन को गन्ध सूँघने से दो मिनट पहिले रख गन्ध सूँघकर वहीं केन्द्र पर अभ्यास करता रहे ।

३—इस प्रकार गन्ध के अभ्यास के दूसरे दिन कपूर की गन्ध में और अभ्यास की गन्ध में कुछ भेद प्रतीत होने लगेगा जो कि कपूर की गन्ध की अपेक्षा रोचक और मन को भाने वाली गन्ध प्रतीत होगी । यह अभ्यास में प्रवेश हो जाने का स्वरूप है । पुनः इस अभ्यास की गन्ध में रोचकता बढ़ती चली जाएगी और जिस दिन से कपूर सर्वथा छोड़ दिया जावेगा उसी दिन से यह रोचकता अत्यधिक होती जायगी और गन्ध भी दिव्य बनती चली जायगी, स्वाभाविक मधुरता (मीठापन) इसमें अनुभव होगा और कपूर से घृणा हो जायगी, बल्कि सभी गन्धों से वैराग्य हो जावेगा ।

४—इस गन्ध का अभ्यास ऐसा रुचिकर और प्रबल होगा कि अभ्यास से उठने को मन ही न करेगा और उठने पर भी घूमते फिरते तथा वार्तालाप करते हुए भी घण्टों तक इसका संस्कार बना रहेगा ।

५—गन्धाभ्यास पक्का हो जाने पर अभ्यास से अतिरिक्त समय में भी कभी कहीं व्याख्यान आदि सुनते हुए मन स्थिर हो जावे तो उसी समय गन्ध का काम स्वयं चालू हो जावेगा ।

६—इस अभ्यस्त गन्ध के ऊपर इतना अधिकार हो जाता है कि जिस समय यह अभ्यास में आ रही हो तो उसी समय नासिका-श्वास को किसी दूसरे के वस्त्र आदि पर फेंक कर उसको इस गन्ध का अनुभव करा सकते हैं । किन्तु यह बात विशेष अभ्यास पर निर्भर है । इधर जाना भी ठीक नहीं है, यह सिद्धि का क्षेत्र है । इससे अभिमान होकर अगले अभ्यास में बाधा होना सम्भव है ।

७—इस गन्धाभ्यास के स्थिर हो जाने पर लगभग एक सप्ताह पश्चात् जिह्वाग्र पर कुछ मीठा रस प्रतीत होगा, किन्तु उस तरफ मन को नहीं ले जाना, प्रत्युत नासिका के केन्द्र में ही मन को रखना क्योंकि जिह्वाग्र-रस नासिका के आगे की भूमि है, अपक्व अवस्था में भूमि बदल जाना ठीक नहीं ।

८—यह कार्य-गन्ध का अभ्यास है, जिसके अन्दर किसी निश्चित गन्ध की दिव्य रूप में प्रतीति रहती है।

९—दोनों समय ही गन्धाभ्यास करने के पश्चात् उठने से कुछ पहले लगभग ५ मिनट 'ओ३म्' का मानसिक जप करना चाहिये, क्योंकि मनुष्य का अन्तिम ध्येय यही है।

१०—इस अभ्यास में न केवल कपूर की गन्ध का ही अपितु अन्य गन्ध का आश्रय भी ले सकते हैं, पर शुरु से अन्त तक अभ्यास में एक गन्ध हो। दूसरे गन्धों में फूलों की गन्ध तथा इतर आदि त्याज्य हैं। पत्तों में यूकलिप्टिस और तुलसी जैसे रोग-नाशक तथा रोगजन्तुनाशक सुन्दर गन्ध वाले वृक्षों के पत्ते ले सकते हैं। ग्रीष्मकाल में कपूर, पिसी हुई इलायची आदि तथा ठण्डे दिनों में यूकलिप्टिस, तुलसी, पिसी जाय-फल आदि से अभ्यास करना चाहिये।

जिनका मन अत्यन्त चंचल हो और पूर्वोक्त तीन दिन शान्त बैठने या ओंकार का जप करने अथवा अन्तर्ध्वनि के सुनने से अभ्यास में प्रवेश की योग्यता उत्पन्न होने की सम्भावना न हो तो उस व्यक्ति को निम्न प्रकार अभ्यास करना चाहिये—

तीन दिन के स्थान पर एक सप्ताह या दस दिन अथवा इससे भी अधिक समय तक पूर्वोक्त अन्तर्ध्वनि आदि का सेवन करे। अथवा प्रातः ७ बजे के लगभग आसन लगा कर बैठ जावे और १ फुट की दूरी पर नाभि की ऊँचाई के बराबर किसी टेबल चौकी आदि पर सफेद कागज या वस्त्र बिछा एक इंच की लम्बी चौड़ी ताजी हरी पत्ती उस पर रख प्रथम दिन दो तीन मिनट टाटक करे। (बिना पलक झपके देखते रहना) इसी प्रकार प्रतिदिन दो-दो तीन-तीन मिनट बढ़ाता हुआ सप्ताह या दस दिन में आध घण्टे तक टाटक का अभ्यास कर ले। किसी दिन टाटक को छोड़ें नहीं किन्तु करता ही रहे। तदनन्तर उक्त कपूर आदि का अभ्यास आरम्भ कर दे।

जिस दिन कपूर का आश्रय छोड़ दिया हो, उस दिन से लेकर कम से कम एक सप्ताह और अधिक से अधिक दो सप्ताह गन्ध का अभ्यास करना चाहिये। आगे बढ़ने वाले अभ्यासियों को दो सप्ताह से अधिक गन्धाभ्यास न करना चाहिये, किन्तु इससे आगे की भूमियों पर जाना चाहिये। अधिक काल तक गन्धाभ्यास ही करते रहने से आगे की भूमि पर चलने में कठिनाई होगी, क्योंकि गन्ध के साथ राग अधिक हो जाने से उसके अन्दर फिर गन्ध-वशीकार की मिद्धियां बाधक बन जाती हैं। अस्तु उपस्थित गन्धाभ्यास से आगे करने का अभ्यास यह है कि उपस्थित गन्धाभ्यास कार्य-रूप है, क्योंकि इसको कपूर के आश्रय से स्थिर किया है। इससे आगे कारण-गन्ध का अभ्यास करना चाहिये। उसकी विधि यह है कि अभ्यास के समय मन को नासिका के केन्द्र पर रखते हुए जो कपूर के आश्रय से अभ्यास की गन्ध प्रतीत हो रही है उसकी तरफ से मन को हटाना अथवा उस गन्ध को नासिका के सूक्ष्म श्वास के द्वारा धकेलते रहना, मन से हटाते रहना, और गन्ध को भुलाते रहना चाहिये। किन्तु मन उसी नासिका के केन्द्र पर स्थिर रहे। एवं गन्ध को भुलाते हुए उसके स्थान पर भिन्न-भिन्न गन्ध प्रतीत होंगी उन सब को हटाना चाहिये। पुनः जब दो-तीन भुलाने हुए सब के हट जाने पर कारण-गन्ध पृथ्वी की अपनी वास्तविक गन्ध (कोरी मिट्टी या प्रथम वर्षा से उत्पन्न भूमि-गन्ध) प्रतीत होने लगे तो उस गन्ध का अभ्यास मन को नासिका के केन्द्र में रखते हुए करना चाहिये। उत्तरोत्तर अभ्यास करने से यह गन्ध भी प्रतिदिन सूक्ष्म और रुचिकर होती चली जायगी और कपूर के आश्रय वाली अभ्यस्त गन्ध से

बढ़कर अत्यन्त रोचक और प्रिय मालूम होगी। इसका अभ्यास कुल दो सप्ताह तक करे। कपूर के आश्रय से गन्धाम्यास-समाधि को सविचार समाधि कहते हैं। क्योंकि इसमें कपूर-चिन्तन का दिव्य स्वरूप है। और कारण गन्ध के अभ्यास की समाधि को निर्विचार समाधि कहते हैं, क्योंकि इसमें गन्धमात्र का नेति-नेति (नहीं-नहीं) स्वरूप है। इस प्रकार ये दोनों समाधियां पातंजल योग-सिद्धान्त के अनुसार समझनी चाहिये—

“सूक्ष्मविषयत्वं चालिगपर्यवसानम्।”

(योग० १।४५॥ सूत्र पर

पार्थिवस्याणोर्गन्धतन्मात्रं सूक्ष्मो विषयः”

व्यास)

विज्ञप्ति—उक्त दोनों प्रकार के गन्धाम्यास के दिनों में जानबूझ कर किसी तीक्ष्ण गंध को सूंघना नहीं चाहिये, क्योंकि अभ्यास के वास्तविक गंध में वह बाधक बनती है।

विशेष—संसार के सुखों में एक गंधमुख भी है, जिसको नासिका इन्द्रिय से उपलब्ध करते हैं, उसकी अपेक्षा अभ्यास की अवस्था में गंध का दिव्य सुख अनुभव होता है, जो सांसारिक गंध-सुख से सैकड़ों गुणा उत्तम सुखमय है, तथा जिसका संस्कार देर तक ठहरता है।

(ख) संसार की सभी गन्धों से विराग हो जाता है, मन उनमें चलित नहीं होता।

(ग) नासिका-शक्ति का विकाम हो जाता है।

(घ) मन की स्थिरता और बुद्धि की वृद्धि होती है।

(ङ) ग्राह्य-मार्ग द्वारा निर्जीव (निर्वस्तुक) समाधि तक पहुंचने के लिये अभ्यास-भूमि पर आरूढ़ होने और आगे बढ़ने का साधन है।

रसतन्मात्रा का अभ्यास

कारण गंध के पीछे रस का अभ्यास करना चाहिये। यद्यपि कारण गन्धाम्यास के अनन्तर ही कारण-रस का अभ्यास किया जा सकता है, क्योंकि कारण गन्धाम्यास की पक्कावस्था में जिह्वाग्र पर रस की भावनाएं आरम्भ होने लगती हैं, उसी समय मन को जिह्वाग्र पर रख कर कारण-रस का अभ्यास कर सकते हैं, तथापि कार्य-रस का अभ्यास भी किया जावे तो अच्छा है। क्योंकि ऐसा करने से मन तृप्त और सांसारिक रसों से निर्विण्ण (विरागी) हो जाना है। तदनन्तर कारण-रस का अभ्यास करना चाहिये। प्रथम कार्यरस के अभ्यास का प्रकार यह है कि जो वस्तु आपको खाने में रुचिकर, मधुर और प्रिय लगती हो उस लीजिए (स्वयं उत्पन्न कोई फल आदि, न कि बनाई हुई मिठाई) जैसा कि अत्यन्त मीठा चिनिया आदि केला, कनमी मधुर ग्राम या कश्मीरी मीठा सेव इत्यादि। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि आपने केले को पसन्द किया। अभ्यास के समय केले को साय ले जावें, छिलके के अन्दर ५ टुकड़े काट कर रख लें। फिर अभ्यास काल में तीन प्राणायाम के पश्चात् केले के एक टुकड़े को उठाकर जिह्वा के अग्रभाग पर आधे मिनट तक पशं करें (यहां स्पर्श का तात्पर्य दबाव या रगड़ से है) और मन से उसके रस को निश्चय करें कि यह किस प्रकार का रस है। फिर उस टुकड़े को फेंक कर दो मिनट तक जिह्वाग्र पर ही मन को रखते हुए उस रस को याद करें। पुनः दूसरी बार दूसरा टुकड़ा उठा कर वैसे ही स्पर्श करके

उसको फेंक दें, और दो मिनट तक मन से याद करें। इसी प्रकार चार बार टुकड़ों के द्वारा अभ्यास करें। अन्त में चौथी बार पांच मिनट तक याद करके उठ जावें और पांचवें टुकड़े को उठाकर खा लें, दो-तीन मिनट तक घूमते हुए उसके रस पर मन को लगाए रखें।

२—इसका अभ्यास-क्रम भी कपूर के समान समझना चाहिए। अर्थात् पहले दिन चार बार, दूसरे दिन तीन बार, तीसरे दिन दो बार, चतुर्थ दिन एक बार इत्यादि। यह रमाभ्यास पहले कपूर गंधाभ्यास की अपेक्षा शीघ्र सिद्ध होने वाला है। इसलिए यदि चाहें तो समयानुसार इसमें हेर-फेर कर सकते हैं, अर्थात् प्रातःकाल चार बार, सायं तीन बार, दूसरे दिन प्रातः दो बार और सायं एक बार, तीसरे दिन प्रातःकाल दो घंटा पहले केले के टुकड़े का कुछ स्पर्श करके अभ्यास करें और सायंकाल चार घंटा पहले चक्खें, फिर केले के आश्रय की आवश्यकता नहीं है। पहले समय दो मिनट का अन्तर और अन्त में पांच मिनट बैठना, दूसरे समय तीन मिनट का अन्तर और पीछे दस मिनट याद करने बैठना, तीसरे समय पांच मिनट का अन्तर और अन्त में पन्द्रह मिनट बैठना, चतुर्थ समय बीस मिनट तक अभ्यास करना, इत्यादि कपूर के समान सब क्रम समझना चाहिए।

३—इस अभ्यास में दूसरे दिन से ही कुछ परिवर्तन शुरू होने लगेगा। अर्थात् केले का रस रोचक होता चला जावेगा और जिस दिन से केले का आश्रय छोड़ दिया जावेगा उसी दिन से इसके अन्दर दिव्यता अधिक आने लगेगी।

४—अभ्यास करते समय प्रतिदिन या प्रतिसमय मन को धीरे-धीरे जिह्वाग्र की ओर विशेष रूप से लाते रहना चाहिए। अन्त में जिह्वाग्र की नोक अर्थात् तिल-बिन्दु पर पांचवें दिन मन को ले आना चाहिये और उसी पर अभ्यास करते रहना चाहिये।

५—दूसरे दिन के अभ्यास में जिह्वाग्र पर रस का पानी आने लगेगा। इसको बारम्बार निगलने की चेष्टा न करना। हां, यदि वह स्वयं ही अंदर चला जावे तो जाने दो। किन्तु अपने मन को जिह्वा पर ही रखना। धीरे-धीरे रस का आना सूक्ष्म होता जावेगा और जिस दिन से केले का आश्रय छोड़ दिया जावेगा उसी दिन से वह केले का अभ्यास रस जल के रूप को छोड़कर जिह्वाग्र से किरणों की अवस्था में निकलेगा और फिर सूक्ष्मातिसूक्ष्म होता जायगा। जैसे-जैसे वह सूक्ष्म होता जायगा वैसे-वैसे ही उसके अन्दर रोचकता और आनन्द अधिक बढ़ता जायगा। यह कार्य-रस का अभ्यास-क्रम है।

विशेष—इस अभ्यास के अंदर भी कपूर अभ्यास के समान सिद्धियां होने लगती हैं। दूसरे मनुष्य को भी यह रस चखाया जा सकता है। अभ्यास के समय उपलब्ध जिह्वाग्रस को पवन, वस्त्र या कागज आदि पर डालकर दूसरों को चखा सकते हैं। किन्तु यह सब त्याज्य मार्ग है, आगे अभ्यास में बाधा पड़ती है।

(ख) जब कार्यरस मिद्ध हो जावे और लगभग दो सप्ताह उस अभ्यास को करते हुए हो जावें तब कार्यरस से मन को हटाते जावें, अर्थात् जिह्वाग्र (जिह्वा की नोक) पर मन रहे किन्तु कार्यरस को भुलाते जावें, जिस प्रकार कार्यगंध को भुलाया था। यद्यपि भुलाते समय अन्य रस भी उपस्थित होंगे तथापि सभी रसों से मन को हटाते रहना। जब दो तीन दिन में कार्यरस भूल जावेगा तब कारणरस अर्थात् स्वा-

भाविक जल का रस जिह्वाग्र पर उपस्थित होगा। फिर उसी का अभ्यास निरन्तर करते रहना। उत्तरोत्तर उसमें सूक्ष्मता आती चली जायगी और कार्यरस की अपेक्षा रोचकता भी बढ़ती जायगी। इस अभ्यास को भी लगभग दो सप्ताह तक करते रहना।

(ग) रसनाशक्ति भी गन्धशक्ति के समान तीव्र हो जायगी और भिन्न-भिन्न प्रकार के रसों के आकर्षण की सिद्धि भी हो सकेगी। दूसरे को भी रसास्वादन कराया जा सकेगा।

रूपतन्मात्रा का अभ्यास

जलीय रसाभ्यास के पश्चात् आग्नेय रूप का अभ्यास करना चाहिए। क्योंकि—

“तैजसस्याणो रूपतन्मात्रं सूक्ष्मो विषयः” [योग १।४५]

इसका प्रकार यह है कि यदि कारण रसाभ्यास के आगे कारण रूपतन्मात्रा का भान होने लगे तो भले ही सीधे उस पर जा सकते हैं। नहीं तो प्रथम कार्य-रूप तन्मात्रा का अभ्यास कर लें। अर्थात् किसी सुन्दर हरी ताजी पत्ती या गुलाब के फूल को सामने रखकर अभ्यास के समय कपूर आदि के समान आत्रे मिनट तक आँखों से देखें और फिर आँख बंद करके दो मिनट तक याद करें। इत्यादि सब क्रम गन्धाभ्यास और रसाभ्यास के समान समझना चाहिये। इसका कारण-रूप बनाने के लिये भी कारणगन्ध और कारणरस के समान ही क्रम समझना चाहिये।

२—मुख के अन्दर तालु (जहाँ अंगुली जैसा काकुवा लटकता है या जिसको कोमल तालु भी कहते हैं) में मन को रखकर रूप का अभ्यास करना चाहिये। क्योंकि—

“तालुनि रूपसंवित्” (योग १।३५ पर व्यास)

३—कारण-रूपाभ्यास आरम्भ से अग्नि से भी सूक्ष्म-विद्युत् जैसा प्रतीत होगा, किन्तु उत्तरोत्तर अभ्यास से विद्युत् से भी अधिक सूक्ष्म, रोचक और शुभ दिखलाई देगा जिसकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती।

कारण रूपाभ्यास की परिपक्वावस्था ही भुवनविज्ञानार्थ सूर्य-संयम करने की भूमि है।

स्पर्शतन्मात्रा का अभ्यास

अग्नि के रूपाभ्यास के आगे अच्छा तो यह है कि मन को तालु से हटाकर उसके (तालु) के नीचे जिह्वा के मध्य में (जो कि त्वग्निन्द्रिय का केन्द्र है) मन को रखकर वायु के स्पर्श का अभ्यास करें। यह कारणस्पर्शाभ्यास है। यदि कार्यस्पर्शाभ्यास भी परीक्षण के लिए करना हो तब भी मन को तालु से हटाकर उसे जिह्वा के मध्य में रखते हुए किसी चिकने या मृदु कांच के गोले आदि वस्तु का हस्त आदि किसी अनुकूल अंग से, कपूर आदि के समान अभ्यास द्वारा स्पर्श का अभ्यास बढ़ करें। परांग-स्पर्श का अभ्यास सर्वथा त्याज्य है।

२—कार्यस्पर्श का अभ्यास यदि किया हो तो उसको भी अधिक से अधिक दो सप्ताह रखकर फिर भुनाते हुए कारणस्पर्श की ओर चला जाना चाहिए और मन को जिह्वा के मध्य में रखते हुए कारणस्पर्शाभ्यास करना चाहिए। इसमें पहले वायु जैसा स्पर्श होगा। फिर रोचकता बढ़ती चली जावेगी और स्पर्श की विविध सूक्ष्म गति अनुभव होगी।

विशेष—सम्पूर्ण शरीर त्वचामय है अर्थात् शरीर के अन्दर और बाहर सर्वत्र त्वचा का राज्य है। अतएव निज शरीर में किसी प्रकार का बल, पुष्टि, स्वस्थता, सौन्दर्य आदि यदि लाना हो तो उक्त जिह्वा के मध्य [त्वचा के केन्द्र] में मन को रखते हुए उस वस्तु के प्रवेश के चिन्तन का अभ्यास करना चाहिये। अधिक समय तक इस प्रकार शरीर में प्रवेशाभ्यास करने से प्रवेश की सफलता अधिक होती है। यह मिद्धि का मार्ग है। आगे बढ़ने वाले अभ्यासी को इधर अधिक नहीं चलना चाहिये। यदि थोड़े बल या पुष्टि के लाभ के उठाने की इच्छा हो तो कारणस्पर्शाभ्यास करते हुए समाप्ति से दो चार मिनट पहले अर्थात् उठते समय उसके प्रवेश का भी अभ्यास कर लेना चाहिए।

शब्दतन्मात्रा का अभ्यास

इस प्रकार वायु के कारणस्पर्शाभ्यास के पश्चात् प्रथम कार्य-शब्द का अभ्यास करे। किसी भी वाद्य (वाजे) की एक रस-ध्वनि यथा हारमोनियम के किसी सुरीले पर्दे की अथवा घण्टी आदि की लगातार ध्वनि को कानों से, कपूर आदि की प्रक्रिया के अनुसार, संख्या और अन्तर के साथ सुन सुन कर अभ्यास करे। किन्तु इस प्रकार साधनों की अनुपलब्धि में अथवा परिस्थिति के कारण बिना वाजे आदि के भी किसी ध्वनि का चिन्तन करके कार्यशब्द का अभ्यास कर सकते हैं। इससे आगे कारण-शब्द का अभ्यास करना चाहिये। अर्थात् कार्यशब्द को भुलाते हुए मन को जिह्वा के मूल में रखने से सूक्ष्म ध्वनि जो आन्तरिक अवस्था से प्रतीत हो और जो ध्वनिमात्र का मूल है, उसका अनुभव होगा।

अहंकार आदि की अभ्यासविधि

अब तक का यह अभ्यास ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा पञ्चभूत तन्मात्राओं का था इसके आगे “तेषामहङ्कारः सूक्ष्मो विषयः” तन्मात्राओं से आगे अहंकार सूक्ष्म विषय है। अहंकार प्रकृति का द्वितीय विकार है “प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारः। अहंकय राक्षसं च तन्मात्राः” मृष्टि बनने के लिये जगत् के कारणरूप प्रकृति का महत्तत्त्व ना-से पहला विकार हुआ। पुनः दूसरा विकार अहंकार के नाम से है। इसके आगे आकाम आदि की तन्मात्राएँ उत्पन्न हुईं। अतएव शब्दतन्मात्रा के अभ्यास के पश्चात् अहंकार का अभ्यास करना चाहिये। इसकी विधि यह है कि कानों के द्वारा शब्द तन्मात्रा कर अभ्यास पक्व हो जाने पर मन को जिह्वा-मूल से हटाकर उससे भी नीचे स्वर-यन्त्रा (श्वास प्रणाली) की तरफ रखकर बिल्कुल चुप बैठ जाना चाहिये और जो भी उस समय मानसवृत्ति से प्रतीत हो उसी को अहंकार समझना चाहिये। कदाचित् किसी ज्ञानेन्द्रिय का विषय गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द अनुभव में आ जावे तो उसको हटाते रहना और मन को किसी भी इन्द्रिय के केन्द्र की तरफ न जाने देना। इस प्रकार तन्मात्रा के विज्ञान से पृथक् अहंकार अर्थात् प्रकृति के विकृतिरूप द्वितीयावस्था का अभ्यास करना चाहिये। जब इस अभ्यास में लगभग एक सप्ताह हो जावे अथवा मन स्वयं ही उस अहंकार से भी बढ़ कर किसी और अवस्था को अनुभव करने के लिये उससे भी आगे स्वयन्त्र के अन्दर को जाना चाहे तो फिर उसी अवस्था में जो अनुभव प्रतीत हो कुछ दिन उन्ही का अभ्यास करता रहे। इस अवस्था में महत्तत्त्व का अनुभव होगा जो कि प्रकृति का प्रथम विकार है। एवं महत्तत्त्व के अभ्यास के अनन्तर प्रकृति का अभ्यास करना होता है। जब महत्तत्त्व का अभ्यास करते हुए लगभग एक सप्ताह

हो जावे अथवा मन स्वयं स्वरयन्त्र के अन्दर की तरफ आगे बढ़कर महत्तत्त्व से भी उच्च अवस्था को अनुभव करने लगे तो फिर उसी का अभ्यास करते रहना चाहिये। यह प्रकृति के स्वरूप का अभ्यास है जो स्वरयन्त्र में कुछ कुछ हृदय के समीप अनुभव होता है। योग के ग्राह्य मार्ग का यह अन्तिम स्थान है जो सूक्ष्मता में पराकाष्ठा रखता है।

ग्राह्य मार्ग अथवा ग्राह्य वस्तुओं का अतिसूक्ष्म स्थान प्रकृति ही है इससे आगे और कोई सूक्ष्म स्थान या सूक्ष्मवस्तु नहीं है। ईश्वर की सूक्ष्मता यद्यपि प्रकृति से अधिक है। किन्तु वह ग्राह्य दृष्टि से नहीं अपितु चेतना-दृष्टि से है। प्रकृति तक के अभ्यास में मन (चित्त) काम करता है अतएव यहां तक का विषय मनोविज्ञान का हुआ और यहां तक की समाधियों को एकाग्रसमाधि, सम्प्रज्ञातसमाधि, सालम्बन समाधि, सवस्तुक समाधि और सबीज समाधि के नाम से कहते हैं। इससे आगे—

“तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः” (योग १।५१)

इस प्रकृति के भी अभ्यास से आगे बढ़ना अर्थात् अभ्यास-समय प्रकृति के अवलम्बन तक को भी त्याग देना सर्वथा निर्विचार हो जाना निरालम्बन या निर्वस्तुक अभ्यास की परिस्थिति में हो जाना है। इसी को निर्बीज समाधि, असम्प्रज्ञात समाधि, निरालम्बन समाधि, निर्वस्तुक समाधि कहते हैं। इसी निर्जीव समाधि में निज आत्म-तत्त्व का आश्रय विश्वात्मदेव ईश्वर में हो जाता है, इसको ब्रह्मसमाधि समझना चाहिये। यह आत्मविज्ञान की भूमि है। इससे आगे आत्मविज्ञान की भूमियां योग के ग्रहीतृमार्ग से सम्बन्ध रखती हैं। उसका परिचय ग्रहीतृमार्ग के प्रकरण में दिया जायगा।

ग्रहण मार्ग का अभ्यास

ग्रहण मार्ग में सुषुम्ना, ज्ञानेन्द्रियों और अन्तःकरण की भूमियां आती हैं। प्रथम सुषुम्ना की भूमियों का अभ्यास किया जाता है। सुषुम्ना के अभ्यास की सात भूमियां हैं इन्हीं को सुषुम्ना के सप्त केन्द्र या चक्र कहते हैं जो कि मूलाधार (गुदा चक्र), स्वाधिष्ठान (उपस्थ चक्र), मणि पूरक (नाभिचक्र), अनाहत (हृदय चक्र), विशुद्ध (कण्ठ चक्र), आज्ञा (त्रिकुटी चक्र या भ्रूकुटी चक्र), ब्रह्मरन्ध्र (मूर्धाचक्र) नाम से कहे जाते हैं। प्राणों के मुख्य केन्द्र यही सप्त चक्र हैं।

“सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणाः” (मुण्डकोपनिषद् २।१।८)

वैदिक शब्दों में ‘भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम्’ के नाम से व्यवहृत होते हैं। सुषुम्ना मेरुदण्ड में प्रधान रूप से रहती है। मेरुदण्ड के नीचे त्रिकास्थि से ऊपर आरम्भ होकर मेरुदण्ड के अन्त में ऊपर बृहन्मस्तिष्क और लघु-मस्तिष्क के संगम तथा ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंचती है। यद्यपि इसके सूक्ष्म तन्तु सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हैं जो ज्ञानवाहक हैं तथापि कुछ तन्तु-समूह या तन्तुग्रन्थियां प्राण-शक्ति और संवेदन शक्ति का अधिक स्थान होने से उनको चक्रों के नाम से कहा है जो कि मूलाधार आदि सप्तचक्र हैं। योग में सुषुम्ना का प्रवेश-द्वार मूलाधार (गुदा चक्र) है। प्रथम इसमें प्रवेश होना चाहिये। पुनः क्रमशः मन आगे स्वयं बढ़ता चला जाता है।

फाल्गुन संवत् २०३०

ग्रहण मार्ग के अभ्यासार्थ प्रथम तीन आभ्यन्तर प्राणायाम करें। पूर्ण श्वास धीरे-धीरे अन्दर लेकर अन्दर ही रोक लें। जब घबराहट हो तब यथासम्भव श्वास को बाहर जाने दें किन्तु बाहर न रोकें। पुनः पूर्णश्वास अन्दर लेकर अन्दर ही पूर्व के समान रोक के प्राणायाम करें। फिर—

सुषुम्ना का अभ्यास—सुषुम्ना का प्रथम चक्र मूलाधार है। वह गुदा के अन्दर घमनी रूप से कुछ गति सा करता हुआ प्रतीत होगा उस पर मन को रखना चाहिये। अर्थात् उसकी गति को लगातार अनुभव करते रहना चाहिये। जब १५ मिनट के लगभग हो जावें तब वहीं पर मन रखते हुए कुछ देर ओ३म् का जप भी करना आवश्यक है। इसी प्रकार दूसरे समय मूलाधार की गति पर मन को २० मिनट रखकर अभ्यास किया जावे। तीसरे समय २५ मिनट, चौथे समय ३० मिनट। एवं कोई तीन चार दिन में ही मन का पूरा आकर्षण मूलाधार के साथ हो जावेगा। पुनः उपरगम होकर उपस्थ-चक्र की ओर उत्क्रान्ति करेगा। परन्तु प्रथम और द्वितीय समय तक विशेष रूप से उपस्थ-चक्र की ओर ध्यान न दिया जावे। पुनः तीसरे समय से उपस्थ-चक्र की ओर उत्क्रान्ति के साथ ही गुदा चक्र छोड़कर उपस्थचक्र पर मन लगाकर अभ्यास करना एवं प्रतिदिन आध घण्टा तक अभ्यास करते रहने से लगभग पांच दिन या एक सप्ताह में ही उपस्थचक्राभ्यास पक्का हो जावेगा और मन को फिर नाभि के समसूत्र में अन्दर की तरफ नाभिचक्र पर रखकर अभ्यास करना चाहिये।

जिसने ग्राह्य मार्ग का अभ्यास न किया हो वह यदि ग्रहण मार्ग पर चलना चाहे तो उसको ग्राह्य मार्ग के पूर्व बतलाए तीन दिन अन्तर्ध्वनि का अभ्यास करके ग्रहण मार्ग शुरू कर देना चाहिये। भेद यही है कि प्रथम दिन से ही दोनों के अभ्यास होंगे।

नाभि-चक्र पर एक सप्ताह अभ्यास करना और जब मन ऊपर चक्र की तरफ गति करे तो मन का हृदय पर रख कर अभ्यास करना अर्थात् हृदय की गति के अनुभव में मन को लगाए रखना चाहिये।

एवं हृदय चक्र के पश्चात् कण्ठ चक्र (कण्ठकूप) पुनः भ्रूकुटी (भ्रूमध्य) पश्चात् ब्रह्मरन्ध्र (कपाल मध्य) तक पाँच-पाँच दिन के अभ्यास से आगे बढ़ते रहना चाहिये। सुषुम्ना की भूमियां केवल ब्रह्मरन्ध्र तक ही हैं। इसके आगे ज्ञानेन्द्रियों की भूमियां हैं।

विज्ञप्ति—यद्यपि सुषुम्ना का अभ्यास साधु लोग करते हैं किन्तु किसी व्यक्ति को इस अभ्यास से अन्दर वात प्रकुपित हो जाने से आन्तरिक वातरोग हाजाता है जिससे शरीर की वात-नाड़ियों और स्रोतो में विकार हो जाने से हानि पहुँचती है। अतः मैं इस सुषुम्ना के अभ्यास मार्ग से अधिक सहमत नहीं हूँ, कम-से-कम जिन व्यक्तियों को नाभिचक्र में पहुँचते ही अभ्यास से उदर में उदावर्त, आध्मान आदि पीड़ा प्रतीत होने लगे तो यह अभ्यास छोड़ देना चाहिए। और जिनको कोई पीड़ा न मालूम हो वे भी हृदय चक्र तक ही अभ्यास करें, आगे करने की ऐसी विशेष आवश्यकता नहीं है। ऐसा न हो कि ऊर्ध्वजत्रु [कण्ठ से ऊपर] वात-प्रकोप होकर हानि पहुँचे। हृदय चक्र से ही ज्ञानेन्द्रियों के अभ्यास की तरफ जा सकते हैं। अथवा नाभि-चक्र से ही जा सकते हैं।

(२) वीर्यनाशक दुर्व्यसन के अभ्यासियों को तो गुदाचक्र और उपस्थचक्र का अभ्यास अवश्य कर लेना चाहिए। ये दोनों स्थानों के अभ्यास उनके वीर्यस्तम्भन के निमित्त दुर्व्यसना के शान्त करने वाले हैं। अस्तु।

नासिकाशक्ति, जिह्वाशक्ति, नेत्रशक्ति, त्वक्-शक्ति, श्रोत्रशक्ति के भेद से ज्ञानेन्द्रियों के अभ्यास की पाँच भूमियाँ हैं। प्रथम तो नासिकाशक्ति के अभ्यास के लिए मन को नासिका में कम से कम २५ मिनट स्थिर करना चाहिए। दो तीन दिन के पश्चात् कुछ मौलिक गन्ध के साथ नासिका प्रणालियों का अनुभव होगा एवं प्रतिदिन कम से कम आध आध घण्टा दोनों समय अभ्यास करना चाहिए। मन नासिका की जिन जिन नालियों में को जाना चाहे जाने देना। इस प्रकार कम से कम एक सप्ताह और अधिक से अधिक दो सप्ताह तक अभ्यास करना चाहिये। पुनः जब आन्तरिक भावना स्वतः ही जिह्वा की तरफ होने लगे तब नासिका-शक्ति का अभ्यास छोड़कर जिह्वा-शक्ति का अभ्यास आरम्भ कर देना चाहिए और उसको धीरे धीरे जिह्वा के केन्द्र (जिह्वा की नोक) पर पहुँचाना चाहिए। एवं जिह्वा-शक्ति के अभ्यास के पश्चात् नेत्र-शक्ति का अभ्यास करना होता है। अर्थात् जिह्वा-शक्ति का अभ्यास करते करते सप्ताह या दो सप्ताह में जब नेत्रों की तरफ आन्तरिक भावना मन की होने लगे तब जिह्वा का अभ्यास छोड़कर नेत्र-शक्ति का अभ्यास करना चाहिए अर्थात् नेत्रों की ओर मन को लेजाकर धीरे धीरे उनके केन्द्र (तालु) में मस्तिष्क के मध्य अवलम्बक (काकूवा जो अंगुलि जसा मूँ में ऊपर लटकता है) की तरफ मन को रखकर अभ्यास करे। ऐसा करने से नेत्रों की सूक्ष्म शिराओं के साथ मूल-ज्योतिः का भान होगा। पुनः कुछ समय व्यतीत होने पर जब मन स्वतः ही शरीर के अग प्रत्यंग में कुछ स्पर्श सा आन्तरिक भाव से अनुभव करने लगे तब त्वचा के केन्द्ररूप जिह्वा के मध्य में मन को रखकर अभ्यास करना चाहिए। इस अभ्यास से प्रेममय मौलिक स्पर्श प्रतीत होगा। फिर जब मन कानों की तरफ आकर्षित सा होने लगे तब त्वचा के अभ्यास को छोड़कर कानों में नाड़ियों की सहायता से जो कि जिह्वा के मूल में संबध रखती है एवं जिह्वा मूल को केन्द्र बनाकर अभ्यास करना चाहिए। यह सूक्ष्म मौलिक शब्द और शब्द-ग्राहक सूक्ष्म तन्तुओं की तान अनुभव होगी। बस, यहां तक ही ज्ञानेन्द्रियों का अभ्यास है।

मन का अभ्यास

श्रोत्रेन्द्रिय का अभ्यास पूर्ण हो जाने पर अर्थात् सूक्ष्म-ध्वनि या तन्तुओं की तान जब लीन होने लगे और मन के संकल्प विकल्प (अस्तुकामः संकल्पः = प्राप्ति की इच्छा संकल्प है, नास्तुकामो विकल्पः = अप्राप्ति की इच्छा विकल्प है) की धाराएँ उठने लगे तब मन की उन धाराओं का निरीक्षण करना चाहिए। अनुचित (व्यभिचार आदि पापमय) धारा को बन्द करके उचित धारा जहाँ तक जावे वहाँ तक जाने देना चाहिए। दो दिन तक मन की इन्हीं धाराओं के निरीक्षण का अभ्यास करे। पुनः सर्वथा धाराओं को बन्द करने का अभ्यास करे एवं संकल्प विकल्प की धाराओं के बन्द हो जाने से मन केन्द्रित और वश में हो जाएगा और स्वस्थ तथा वास्तविक स्थिति में उसका अनुभव होगा। जिसके अनुभव से इन्द्रियों की अपेक्षा अधिक आनन्द होगा एवं दो सप्ताह तक या आवश्यकता के अनुसार इस अभ्यास को करना चाहिए।

विज्ञप्ति—संकल्प विकल्प से रहित मन की अवस्था में किसी दोष को अपने अन्दर से हटाना चाहो तो मन के केन्द्रित अवस्था में दोष का बारम्बार आन्तरिक तिरस्कार घृणा-दृष्टि से पृथक्करण की भावनाएँ करते रहो कि अमुक दोष बहुत खराब है, मेरे अन्दर न रहना चाहिए, दूर हो जाना चाहिए, यह बड़ा हानिकार है। मैं इसको हटा दूंगा और बल से हटा रहा हूँ, अवश्य दूर हो जायेगा और दूर होता जा रहा है

इत्यादि विकल्प-धारा को उपजाकर लाभ उठाना चाहिए। इसी प्रकार जिन गुणों को अपने अन्दर लाना हो पूर्वोक्त मन की केन्द्रित अवस्था में उनके प्रवेश की गहरी इच्छा करो कि अमुक गुण मेरे अन्दर आना चाहिए, अवश्य आना चाहिए। आवेगा, अवश्य आवेगा और आ रहा है। एव सकल्प वृत्ति को बारम्बार उठाके लाभ प्राप्त करना चाहिए। यह एक मानसिक विकास के द्वारा दुर्गुणों को दूर करने और उत्तम गुणों के प्राप्त करने का प्रकार है। इस अभ्यास से कोई समय ऐसा अवश्य आ जाता है जब कि वह दोष दूर हो जाता है तथा आमन्त्रित गुण प्राप्त हो जाता है।

प्रश्न—दूसरे व्यक्ति के दुर्गुण हटाने और उसके अन्दर उत्तम गुणों के लाने का भी कोई उपाय है ?

उत्तर—हां ! अवश्य, पूर्वोक्त मनोविकास का अभ्यासी जिस व्यक्ति के दुर्गुण निकालना चाहे उसको सावधान बना प्रातःकाल आदि शान्त समय में स्वयं अभ्यास से निवृत्त हो अपने सामने बिठालकर वर्तमान दुर्गुण की हानियों और बुराइयों का परिचय देते हुए प्रेममय शब्दों में उसके त्याग देने का उपदेश नये नये ढंग से दो चार दिन तक देता रहे। ऐसा करने से अवश्यमेव वह व्यक्ति उस दुर्गुण को त्याग देगा, कभी कभी केवल एक दिन के उपदेश से भी ऐसा प्रभाव हो जाया करता है। परन्तु साधारण मनुष्यों को भी चाहिए कि जिस व्यक्ति के दोष दूर करने हों उस व्यक्ति को अद्विनिद्रा में मेस्मेरिज्म या हिप्नोटिज्म से सुलाकर या जब स्वाभाविक नींद आनी शुरू हुई हो तो उसके कान के पास मुख करके धीमे धीमे शब्दों से उक्त दुर्गुण के छुड़ाने का उपदेश बारम्बार दें। इसी प्रकार उत्तम उत्तम गुणों के प्रवेश के लिये भी यही उपदेश का प्रकार है। माताएँ अपने बच्चों के अन्दर अच्छा भाव तथा उत्तम गुण डालने के लिए सोते समय उपदेश-भरी लोरियाँ दें तो सन्तान उत्तम गुण से युक्त हो सकते हैं।

बुद्धि का अभ्यास

जब मन की संकल्प विकल्प धाराएं बन्द हो जावें और मन केन्द्र में निश्चेष्ट होकर दो चार दिन बीत जावें या बुद्धि के सन्देह और निश्चय करने की धाराएं उपस्थित होने लगें तो उनमें से अनिष्ट धाराओं को बन्द रखते हुए शुद्ध धाराओं पर बुद्धि को यथेष्ट गमन करने दें। पुनः धीरे धीरे दोनों धाराओं को बन्द करके केन्द्र में उपस्थित बुद्धि के स्वरूप पर अभ्यास करता रहे जो मन से भी सूक्ष्म वस्तु है। अतएव इसके अभ्यास में मन से अधिक आनन्द प्रतीत होता है। पुनः निर्मल बुद्धि से सन्देह स्थलों में शीघ्र सन्देह तथा निर्णय विषयों का शीघ्र निर्णय कर सकेगा। यह बुद्धि शक्ति का परिचय तथा विकास है।

चित्त का अभ्यास

जब बुद्धि के केन्द्रित अभ्यास की पक्कावस्था हो जावे या चित्त की भूत-स्मृति और भावी लक्ष्य की वृत्तियाँ उठने लगें तो उसी प्रकार अग्राह्य वृत्तियों को बन्द करके उचित भूत-स्मृति और भावी लक्ष्य धाराओं पर चित्त का अभ्यास करके पुनः उन दोनों वृत्तियों को भी बन्द करके चित्त को केन्द्र में लाकर अभ्यास करे। इसका स्वरूप बुद्धि की अपेक्षा गूढ़ है। अतएव इसके दर्शन से भी विशेष सुख का अनुभव होता है। इसके आतिरिक्त स्मरण-शक्ति बढ़ाई जा सकती है। अर्थात् प्रथम तीन घण्टे

पूर्व का स्मरण करना पुनः छः घण्टे पूर्व का एवं द्विगुणित काल के स्मरण-क्रम का अभ्यास करने करते अपने अत्यन्त शैशव काल को स्मृति-पथ पर ला सकते हैं। इसी प्रकार दूसरे के प्रति भी इसका अभ्यास किया जा सकता है। एवं भावी उद्देश्य विषयक स्मरण का भी यही क्रम है। यह चित्त की शक्ति के परिज्ञान और विकास का स्वरूप है।

अहंकार का अभ्यास

चित्त का अभ्यास पक्व हो जाने पर अहंकार का अभ्यास करना होता है अर्थात् जब अहंकार की "ममेदम् = पुत्र मेरा है, स्त्री मेरी है, घर मेरा है, अमुक व्यक्ति मेरा है, यह मेरा है, वह मेरा है" की वृत्ति जागे तो उसको उचित रूप से जहां जाना चाहती है जाने दें; पुनः उस वृत्ति को सूक्ष्म कर दें और परिणाम निकालें कि कोई भी वस्तु मेरी नहीं है। यह शरीर भी वास्तव में अपना नहीं है। कुछ काल के बाद मुझे छोड़ देना ही पड़ेगा। एवं "ममेदम्" की वृत्ति को बन्द करके "अहमिदम्" = मैं ऐसा हूँ, मैं पुष्ट हूँ, मैं कृश हूँ, मैं सुनेत्र हूँ, मैं पवित्र हूँ, आदि आदि शरीर, इन्द्रियों और अन्तःकरण के धर्मों को उचित रूप में अपने अन्दर अनुभव करके पुनः उनका भी विराम कर दे और अहंकार को केवल "अहमस्मि = मैं हूँ" बस इसका ही अनुभव और अभ्यास करे। मैं ऐसा हूँ वंसा हूँ इसका भाव बिलकुल हटा दिया जावे। लगभग एक सप्ताह ऐसा अभ्यास करे एवं अभ्यास से अहं शक्ति में इतना बल आ जाता है कि जिसका ममत्व करता है वह वस्तु उसकी हो जाती है तथा जिस आन्तरिक धर्म से युक्त अपने आपको बनाना चाहता है वह वैसा बन जाता है।

बस यही ग्रहण मार्ग की अन्तिम-भूमि का स्वरूप है क्योंकि यहां तक अवलंबन के साथ समाधियाँ होती रही हैं। पुनः "अहमस्मि = मैं हूँ" में से "अहम् = मैं" को निकाल दिया जावे तो 'अस्मि = हूँ' का बोध होते ही सर्वनिरोध में परमेश्वर के "अस्ति है" का अनुभव होकर विश्वात्मा जगदीश देव के अस्तित्व का निश्चय होगा। यही उपनिषदों का ध्येय है "अस्तीत्येवोपलब्धव्यः। अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्य तत्त्वभावः प्रसीदति" (कठोपनिषद्) इसका अभ्यास कुछ काल तक करते रहना चाहिए एवं ग्रहण मार्ग द्वारा ब्रह्मसमाधि का स्वरूप यही है।

ग्रहीतृ मार्ग का अभ्यास

ग्राह्य मार्ग, ग्रहण मार्ग द्वारा सर्वनिरोधावस्था में अपने स्वरूप के साथ जब "अस्ति = है" की अवस्था में ब्रह्मात्मा का निश्चय हो जावे तो उसको "ओम्" समझना चाहिए। इसकी चार भूमियाँ हैं क्योंकि "ओम्" के चार विभाग हैं अतएव वाच्यरूप ब्रह्मानुभव के अभ्यास की चार भूमियाँ हैं जो कि ओम् के अ, उ, म्, इति = अभ्यास पूर्वक विराम रूप वाचक के साथ समन्वय से चार अवस्था-रूप भूमियों के द्वारा अभ्यास क्रम ग्रहीतृमार्ग है। अर्थात्—

(१) अ = जागरितावस्था भूमि—स्वकीय स्थूल शरीर से—स्थूल संसार में ब्रह्मदर्शन।

(२) उ = स्वप्नावस्था भूमि—स्वकीय सूक्ष्म शरीर से—सूक्ष्म जगत् में ब्रह्मदर्शन।

कालगुप्त संवत् २०३०

(३) म्=सुषुप्तावस्था भूमि—स्वकीय कारण शरीर से—अव्यक्त में ब्रह्म-दर्शन ।

(४) इति, विराम—तुरीयावस्था भूमि—स्वकीय आत्मा से एकात्मा में—अद्वैतता में ब्रह्मदर्शन ।

इन भूमियों के अभ्यास का प्रकार यह है कि प्रथम तीन स्तम्भवृत्ति प्राणायाम करे अर्थात् श्वास को जहां का तहां बिना विचारे एकदम रोक देवे । वह बाहर है या भीतर है इस पर कुछ भी ध्यान न दे, एवं जब घबराहट होने लगे तब उस को यथानु-कूल चालू कर देना एवं दूसरी बार भी ऐसा ही करता जावे । ग्रह्य मार्ग द्वारा निर्वस्तुक तथा ग्रहणमार्ग द्वारा निरालम्बन अवस्था में विश्वात्मा के अस्तित्व की तरफ स्वात्म-गति होकर स्थूल ससार में ब्रह्मात्मदर्शन की प्रथम भूमि की उपजता होगी । उसी का विशेषाभ्यास करने से दृढ़ानुभव की आवश्यकता है । इसके लिए माण्डूक्योपनिषद् का सहाय लेना आवश्यक है । उक्त उपनिषद् पर मैंने भी सविस्तर भाष्य लिखा है और वहां उपासना-पद्धति को भी बतलाया है । ग्रहीतृमार्ग के अभ्यासियों को उक्त भाष्य पढ़ लेना अच्छा है । अस्तु । ब्रह्मात्मा के अस्तित्व की उपजता हो जाने पर प्रथम भूमि का अभ्यास करने के लिए “विनातवाच्यवाचकत्वस्य योगिनः “तज्जपस्वदर्थभावनम्” (योग । सप्ताधिपाद । २) प्रणवस्य जपः प्रणवाभिधेयस्य चेश्वरस्य भावनम् । तथा ‘स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत् । स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा तस्मा-शते” योग दर्शन में पतञ्जलि मुनि और व्यास जी कहने हैं कि ओ३म् वाचक (शब्द) और विश्वात्मा वाच्य (वर्ण) के सम्बन्ध को जिसने समझ लिया है वह पुष्प ओम् का जप और उसके अर्थरूप ईश्वर का अनुभव करे । तथा स्वाध्याय अर्थात् ज्ञानयोग (ब्रह्मचिन्तन) से कर्मयोग (वृत्तिविमुखी प्रयत्न प्राणायामादि अभ्यास) का सेवन करे और कर्मयोग से ज्ञानयोग का सेवन करे एवं बारम्बार एक दूसरे के सहयोग से पर-मात्मा का साक्षात् हो जाता है । अतः उपासना समय पूर्वोक्त आत्मास्तित्व के अनुभव के साथ प्रथम भूमि के अभ्यास के लिए ओम् का जप करे । जप के अग्रभाग अ को लम्बा करे और माण्डूक्योपनिषद् के “जागरितस्थानो वहिःप्रज्ञः सप्तांग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः” ॥३॥ तथा “जागरितस्थानो वैश्वानरो अकारः प्रथमा मात्राऽऽप्तेरादिमत्वाद्वाऽऽप्नोति ह वै सर्वान् कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥६॥

❁ (जागरितस्थान) जागरितस्थान जिसका है वह जागरितस्थानी या जाग-रितप्रवृत्ति वाला (वहिःप्रज्ञः) बाहर प्रज्ञा जिसकी है =व्यक्त कारणरूप जगत् में बुद्धि रखने वाला (सप्तांग) सात अंग जिसके है वह सात अंग वाला (एकोनविंशति मुखः) उन्नीस मुखवत्-प्रधान शक्ति वाला (स्थूलभुक्) स्थूल पालने वाला (वैश्वानरः) सबका नायक प्रेरक या पालक (प्रथमः पादः) सो वह ऐसे लक्षणयुक्त प्रथमा-वस्था वाला या प्रथम प्रकार से समझा जाने वाला या अग्रिम उपाय से निश्चय होने वाला “ओंकारवाच्य” ब्रह्म है सो यह एक दर्शन है ॥३॥

(जागरितस्थानो वैश्वानरः) प्रथमावस्था सम्बन्धी अदि और अन्त के शब्द लेकर वर्णन है कि जो ब्रह्मात्मा की प्रथमावस्था तृतीय मन्त्र में वर्णन की है वह (अकारः प्रथमा मात्रा) ओंकारात्मक अक्षर में “अकार या अ” वर्णरूप प्रथम मात्रा है (आप्तेरादिमत्वाद्वा) आप्तेः=प्रवृत्ति लक्षणा में आप्ति से, आदिमत्वाच्च=और निवृत्ति लक्षणा में आदिमता से (आप्नोति ह वै सर्वान् कामान्) ह वै=अवश्य ही

मन्त्रों के अनुसार ब्रह्मास्तित्व का अनुभव करे एवं जप और अर्थभावना के बारम्बार सहयोग से वितर्कानुगम समाधिरूप ब्रह्मास्तित्व की प्रथम भूमि प्राप्त तथा पक्व होगी और निज स्थूल शरीर वा जागरितावस्था की आप्तकामता और स्वस्थता भी प्रतीत होगी । (मन्त्रों की व्याख्या टिप्पणी में देखो ।)

सर्वानाप्नोति कामान् प्रवृत्ति लक्षणा में सर्वथा आप्तकाम हो जाता है (आदिश्च भवति) निवृत्तिलक्षणा में प्रथम स्थिति में वतमान हो जाता है (य एव वेद) जो उपापक इस जागरितवस्था और अ वर्ण के संबन्ध को जानता है ॥६॥ (इन दोनों मन्त्रों का विशेष व्याख्यान निम्न प्रकार समझें—

वस्तुगत्या ब्रह्म का ज्ञान करने या कराने में यही पहला निश्चय है जैसे ब्रह्म का ज्ञान कराने के लिये शिष्य के सम्मुख गुरु जी गौ आदि कोई खिलोना बना कर और सामने रखकर शिष्य से पूछते हैं कि—

गुरु—बच्चा, यह खिलोना किसने बनाया ?

शिष्य—गुरु जी, अमी मेरे सम्मुख आपने ही बनाया है ।

गुरु—तो फिर यह तुम्हारा और मेरा शरीर तथा ये सूर्यादि पदार्थ किसने बनाये हैं ?

शिष्य—[मन में विचार कर कहता है कि] हां, इन सबका बनाने वाला है तो सही परन्तु वह कैसा है यह मैं नहीं जानता हूं, (फिर गुरु भी भली प्रकार इस 'जागरितस्थानः' मन्त्रानुसार सब लक्षणाओं के द्वारा जानता है । तदनन्तर यथायोग्य उच्च सीमा पर भी ले जाता ही है ।) अथवा कोई मननशील कार्य और कर्त्ता के सम्बन्ध को जानने वाला सायं प्रातः जंगल में जाकर उदय और अस्त होते हुए सूर्य को देखे तथा अन्य तारकादि नक्षत्र और जंगल के विविध पदार्थों को देखकर मन में निश्चय करता है कि हां इस जगत् का बनाने वाला है पर वह किस अवस्था में है इसका मैं विचार करता हूं एवं विचारावस्था में उसको इसके बनाने वाले का प्रथम गुण उपलब्ध होता है 'जागरितस्थानः' जागरितस्थानी जागरित प्रवृत्ति वाला—अपने से भिन्न स्थूल जगत् को प्रवृत्ति में लाना हुआ है, एवं दूसरे गुण की उपलब्धि होती है 'बहिःप्रजः' व्यक्त कार्यात्मक जगत् में बुद्धि जिमकी लगी हुई एवं तत्काल ही तीसरा गुण विनात होता है 'सप्तांगः' जिस प्रदेश में चेतन वस्तु व्याप्त या प्रविष्ट होकर नियन्ता के रूप में विराजता हो वह उसका अंग समझा जाता है । जब यह है तो वैदिक शब्दों में 'यस्य भूमिः प्रमा०' भूमि गाँवों; अन्तरिक्ष उदर, द्यौ को मूर्द्धा इत्यादि सात अंग वर्णन किये हैं तथा लौकिक परिभाषा से पृथ्वी लोक, चन्द्र लोक, सूर्य लोक, यम लोक, अन्तरिक्ष लोक, द्युलोक, और ब्रह्मलोक, हैं ज्योतिष् या खगोलविद्या से मंगल, सोम, आदित्य, शनिश्चर, शुक्र, बृहस्पति, और बुध, ये समझे जाते हैं, जिनके आधार पर दिनों की व्यवस्था है एवं इन लोकादिकों में ब्रह्म व्यापक होकर इनका नियन्ता है क्योंकि यदि पृथ्वीलोक में ही हो तो सूर्यलोक में धौन कार्य करे या सूर्यलोक में ही हो तो पृथ्वीलोक में या अन्यत्र धौन नियामक हो ? एवं किसी एक में होकर अन्यत्र नियामक और कर्त्ता न हो सकेगा और जहां एक देश में होगा वहां एक देशीवत् दुरुपाधियां पोछे लग जावेंगी । फिर ब्रह्म या ईश्वर भाव से पतित हो जावेगा । अतः सब लोकों में जो उसके अंग हैं व्यापक होकर नियन्ता है, एवं इस सप्तविध अंगव्यवस्था से सप्तांग है । तत्पश्चात् ही विचार दशा में चतुर्थ गुण प्रतीत हो जाता

द्वितीयावस्थारूप भूमि

प्रथम भूमि का अभ्यास करते-करते जब स्थूल जगत् के सम्बन्ध में पृथक् सूक्ष्म जगत् में ब्रह्मात्मा के मान की दूसरी भूमि के संस्कार उदय होने लगें तथा निज परिस्थिति में सूक्ष्म शरीर और स्वप्नावस्था (सूक्ष्मावस्था) जैसे भाव प्रतीत होने लगें तब ब्रह्मात्मा के साक्षात् की या ओंकारोपासना की द्वितीय भूमि का अभ्यास इस प्रकार करना चाहिये कि प्रथम ओम् का जप करे। जप के मध्य भाग उ (ओ की पिछली मात्रा) को लम्बा करे और माण्डूक्योपनिषद् के “स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्तांग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक् तेजसो द्वितीयः पादः” ॥ ४ ॥ तथा “स्वप्नस्थानस्तंजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वादोत्कर्षंति ह वै ज्ञानसन्तति समानश्च भवति एवं वेद” ॥ १० ॥ मन्त्रों के अनुसार ब्रह्मास्तित्व का अनुभव करे एवं जप और अर्थ-

है, ‘एकोनविंशतिमुखः’ उन्नीस मुखवत् प्रधान शक्ति वाला भी है अर्थात् जैसे मैं कुछ भी कार्य करता हूं तो पंचज्ञानेन्द्रिय और पंचकर्मेन्द्रिय तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार [अन्तःकरण चतुष्टय] और पंचभूत इन उन्नीस संघटन सहित होता हुआ करता हूँ, बिना इनके नहीं एवं वह ब्रह्म यद्यपि एक देशी या शरीरधारी नहीं हैं तथापि ये उन्नीस भी उसमें शक्ति रूप से हैं जैसे वेद में भी कहा है कि—

“विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखः० इत्यादि ॥

सब ओर घ्रांख वाला और मुख वाला इत्यादि वह ब्रह्म है। सब ओर मुखादि का होना असम्भव है अतः शक्तिरूप से है। जैसा वेद में वर्णन किया है वैसे ही इस उपनिषद् में समझें (विशेष परिचय के लिये देखो माण्डूक्य० भाष्य) पुनः पञ्चमगुण का परिचय होता है, ‘स्थूलभुक्’ स्थूल जगत् का स्यापक, पालक या रक्षक है। यदि ऐसा न हो तो सब लोक लोकान्तर परस्पर टकराकर या विरुद्धगति करके अपने स्वरूप से नष्ट-भ्रष्ट हो जावें। फिर विचारान्तर्गत अन्तिम षष्ठ (छठा) गुण का बोध होता है “वैश्वानरः” सबका नायक या चालक जैसे यंत्र [मशीन] के मूलस्थान पर प्रज्वलित अग्नि सब कलाओं को चलाने वाला वैश्वानर रूप में होता है एवं वह प्रथम अवस्था वाला या प्रथम प्रकार से समझा जाने वाला या अग्निमोपाय से दर्शन में आने वाला सो यह ब्रह्म है ॥ ३ ॥

“जागरितस्थानो बहिःप्रज्ञः०” मन्त्र के अनुसार ब्रह्म के छः गुणों का प्रत्यक्ष होने से गुणी जो ब्रह्म उसका प्रत्यक्ष समझा जाता है क्योंकि गुणों का ही प्रत्यक्ष होता है गुणी का नहीं। गुणों के प्रत्यक्ष से ही गुणी का निश्चय होता है। स्वामी दयानन्द भी सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं “अब विचारना चाहिये कि इन्द्रियों और मन से गुणों का प्रत्यक्ष होता है गुणी का नहीं।

(स्वप्नस्थानः) स्वप्नस्थान जिसका है=स्वप्नस्थानी=स्वप्नप्रवृत्ति वाला=विचार प्रवृत्ति वाला (अन्तःप्रज्ञः) अन्तर्गत सूक्ष्म जगत् में जिसकी बुद्धि लगी है (सप्तांगः) पूर्ववत् (एकोनविंशतिमुखः) पूर्ववत् (प्रविविक्तभुक्) प्रविविक्त=प्रविचेचन गत सूक्ष्म जगत् का पालक (तेजसः) तेजः स्वरूप=बिजली के समान (द्वितीयः पादः) द्वितीयावस्था वाला=द्वितीय प्रकार से समझा जाने वाला=द्वितीय उपाय से निश्चय में आने वाला वह यह आत्मा ओंकार वाच्य है ॥ ४ ॥

भावना के बारम्बार सहयोग से विचारानुगम समाधिरूप ब्रह्मास्तित्व की द्वितीय भूमि उपलब्ध तथा दृढ़ होगी। निज सूक्ष्मशरीर और स्वप्नावस्था की उत्कर्षता तथा मध्य शान्ति और दिव्य सुखों की प्रतीति होगी (मन्त्रों की व्याख्या टिप्पणी में देखो)।

केवल उपासकों के पढ़ने योग्य वचन—

जागरितस्थानी की उपासना के अनन्तर स्वप्नस्थानी के उपासनासमय यह दृढ़ निश्चय करे कि इस जागरितस्थानी से पूर्व जो स्वप्नस्थानी अवस्थायुक्त ब्रह्म था सो अब भी है क्योंकि जागरितस्थानी कारण है अतः समवाय सम्बन्ध से वह विराजमान है जैसे घड में मिट्टी भी समवाय सम्बन्ध से रहती है तथा गर्भाशय में मेरा यह नेत्रादि बाह्य सप्तांगों से युवत शरीर जब न बना था तो इससे पूर्व आभ्यन्तर सप्तांग युक्त शरीर बन चुका था और उसमें मैं था जैसे ब्रह्मात्मा के “भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्” ये सप्तांग (लोक) स्वप्न स्थानी में थे और हैं एवं मेरे भी आभ्यन्तर सप्तांग भूः आदि मृषुम्ना नाड़ी के साथ सम्बन्ध रखने वाले सप्तचक्र अर्थात् “गुदाचक्र, उपस्थचक्र, नाभिचक्र, हृदयचक्र, कण्ठचक्र, भ्रूचक्र, मूर्धाचक्र” हैं जिन को “मूलाधार, स्वाविष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा, ब्रह्मरन्ध्र” भी कहते हैं बन चुके थे जिनके साथ प्राणों की योजना है जैसे उपनिषद् में भी कहा है कि—

(स्वप्नस्थानस्तैजसः) उक्त द्वितीयावस्था सम्बन्धी आदि और अन्त के लक्षणों को लेकर आचार्य उपदेश करता है कि स्वप्नस्थानी द्वितीयावस्था (उकारो द्वितीया मात्रा) ओंकारात्मक अक्षर में उकार उ दूसरी मात्रा है (उत्कर्षादुभयत्वाद्वा) उत्कर्ष अर्थात् प्रवृत्ति लक्षणा में उत्थान के चलते रहने से और निवृत्ति लक्षणा में मध्यगति होने से (उत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति य एवं वेद) निःसन्देह उन्नत करता है सन्तति = शब्द सन्तान के समान ज्ञान-स्रोत को और निवृत्ति लक्षणा में दोनों ओर समानाधिकारी मध्यवर्ती हो जाता है जो उपासक इस प्रकार स्वप्नावस्था और उकार मात्रा के सम्बन्ध को जानता है ॥१०॥ (विशेष व्याख्यान निम्न प्रकार समझें—

ब्रह्म विचार निमग्न जंगल में गये हुए मननशील पुरुष की बुद्धि ओंकार रूप आत्मा में आगे विस्तृत होती है अर्थात् आगे मनन करता है जबकि यह जगत् इतने व्यक्त [स्थूल] स्वरूप में न था तो यह ब्रह्मात्मा किस अवस्था में था यह विचार उठाकर निश्चय करता है कि विचार प्रवृत्ति वाला, अन्तर्वर्ती—सूक्ष्म जगत् में इसकी बुद्धि लगी हुई है, पूर्ववत् सात अंग वाला अर्थात् पृथ्वी आदि सात लोकों को व्याप्त होकर के नियन्ता रूप के में विराजता है परन्तु वे लोक पूर्व जैसे व्यक्त स्वरूप वाले नहीं हैं और न ही उनकी इन व्यक्त बाह्य इन्द्रियों से पूर्व के समान उपलब्धि होती है क्योंकि यदि तब भी वे लोक पूर्व जैसे ही व्यक्तेन्द्रियों से ज्ञात होने वाले जो इस समय हैं ऐसे ही हों तो फिर औषधियाँ और प्राणी भी क्यों न हों अतः उस समय ये लोक सूक्ष्म स्वरूप से वर्तमान होते हैं जो कि वे भू, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्, इ= सात व्यहृति-नामों से बहे जा सके हैं। उन्नीस प्रधान शक्ति वाला भी पूर्व जैसा है परन्तु पूर्व की अपेक्षा शक्तियों का स्वरूप भी सूक्ष्म है। सूक्ष्म जगत् का पालक, स्थापक, रक्षक तेजःस्वरूप बिजली के समान वह यह द्वितीय अवस्था वाला ब्रह्मात्मा है ऐसा दृढ़ निश्चय है ॥४॥

सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणाः ॥ (मुण्ड० । २ । १ । ८)

ये सात लोक हैं जिनमें प्राण विचरते हैं ॥

इसी कारण प्राणायाम मन्त्र में “भूः आदि” सप्त व्याहृतियां रखी हुई हैं, सो ऐसा विचार करे कि मैं उस समय इन अभ्यन्तर सप्तांगों से युक्त था सो अब भी समवाय सम्बन्ध से इन सप्तांगों में स्थित हूँ ही, अतः प्राणायाम करने से उस सप्तचक्र-युक्त सुषुम्ना को कम्पन होगा जिससे प्राण के साथ चित्तवृत्ति अन्तर्मुख होगी फिर सूक्ष्मशरीर किंवा स्वप्नावस्था में उगसक की स्थिति होकर स्वप्नस्थानी ब्रह्म की उपासना समीचीन और यथार्थ बन सकेगी ॥ १० ॥

तृतीयावस्था रूप भूमि—

द्वितीय भूमि का अभ्यास करते-करते जब सूक्ष्म जगत् के सम्बन्ध से पृथक् आनन्द अर्थात् अव्यक्त में कारण रूप प्रकृति मात्र से सम्बन्ध रखने वाले ब्रह्मात्मा के अनुभव की तृतीय भूमि के संस्कार जागृत होने लगें तथा निज परिस्थिति में कारण शरीर और सुषुप्तावस्था जैसे भाव प्रतीत होने लगें तब ब्रह्मात्मा के साक्षात् की या ओंकारोपासना की तृतीय भूमि का अभ्यास करना चाहिये कि प्रथम ओम् का जप करे । जप के अन्तिम भाग म् का अनुजप देर तक रखे और माण्डूक्योपनिषद् के “सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्-तृतीयः पादः” ॥५॥ तथा “सुषुप्तस्थानः प्रज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एव वेद *” ॥११॥ मन्त्रों के अनुसार ब्रह्मास्तित्व का अनुभव करे एवं जप और अर्थभावना के बारम्बार सहयोग से आनन्दानुगम समाधिरूप ब्रह्मास्तित्व की तृतीयभूमि प्राप्त और समाप्त होगी विकास में मूल और सहार के केन्द्ररूप निज कारण-शरीर तथा सुषुप्तावस्था और उसका मूल आनन्द प्राप्त होगा । (मन्त्रों के अर्थ नीचे टिप्पणी में देखा ।)

* (यत्र) जिस अवस्था में (सुतः) सोया हुआ (न कंचन कामं कामयते) किसी भी विषय को उपस्थित स्थूल सृष्टि के सम्बन्ध से नहीं चाहता (न कंचन स्वप्नं पश्यति) नहीं किसी विचार को सूक्ष्म सृष्टि के सम्बन्ध से अनुभव करता है (तत्सुषुप्तम्) वह सुषुप्तावस्था कहाती है । अतएव (सुषुप्तस्थानः) सुषुप्त स्थान जिसका है = सुषुप्तस्थानी = सुषुप्त प्रवृत्ति वाला (एकीभूतः) अनेक पृथ्वी आदि लोक नाम और रूप को छोड़कर एक प्रकृति मात्र हो गये जिसमें से वह एकीभूत (प्रधानघन एवं) प्रज्ञान = निरतिशय ज्ञान ही है घन = स्वरूप जिसका वह निरतिशय ज्ञान स्वरूप = गूढ़प्रज्ञ (ह्यानन्दमयः) आनन्द से प्रचुर (आनन्द भुक्) आनन्द = अति सूक्ष्म का पालक (चेतोमुखः) चेतना ही मुखवत् प्रधान शक्ति है जिसकी वह चेतनस्वरूप (प्राज्ञः) ईक्षक या द्रष्टा प्रज्ञ ही प्राज्ञ (तृतीयः पादः) तृतीयावस्था वाला या तृतीय प्रकार से समझा जाने वाला है ।

जो अशेष आनन्द से युक्त है तथा अनिसूक्ष्म कारणाख्य प्रकृति का पालक या स्थापक है, चेतना ही जिसकी मुख्य शक्ति है ऐसा वह चेतोमुख और प्रज्ञ = ईक्षक या द्रष्टा अर्थात् प्रकृति को ईक्षण मात्र से ही सम्मुखी करता है ऐसा तृतीय अवस्था वाला या तृतीय प्रकार से समझा जाने वाला या तृतीय उपाय से निश्चय होने वाला वह यह आत्मा [ओङ्कर वाच्य] है ॥५॥

केवल उपासकों के पढ़ने योग्य वचन

स्वप्नस्थानी की उपासना के अनन्तर सुषुप्तस्थानी के उपासना समय यह दृढ़ निश्चय करे कि इस स्वप्नस्थानी से पूर्व जो सुषुप्तस्थानी अवस्थायुक्त वह ब्रह्म था सो अब भी समवाय सम्बन्ध से है तथा गमाशय में इस मेरे सप्त चक्र 'भूः आदि' सुषुप्तागत शरीर के बनने से पूर्व हृदय प्रदेश या हृदयनामक जीवनस्थान जीवके शरीर में योजना के लिये प्रथम सम्बन्ध रूप जो पूर्व था सो अब भी समवाय सम्बन्ध से उसमें

(सुषुप्तस्थानः प्रजः) पूर्वोक्त तृतीय अवस्था सम्बन्धी आदि और अन्त के गुणों को लेकर आत्रय्य दर्शाता है कि ब्रह्मात्मा की सुषुप्तस्थानी तृतीयावस्था जो कही है वह (मकारः तृतीया मात्रा) ओंकारात्मक अक्षर में मकार [म्] वर्णरूप तृतीय मात्रा है (नितेरपीतेर्वा) मापक और अन्तक होने से। 'वा' शब्द पूर्व के समान समुच्चयार्थ है। नितेः = प्रवृत्तिलक्षणा में लिंगरूप मापक होने से, क्योंकि यहां प्रवृत्तिलक्षणा की आप्ति और उत्कर्ष नहीं है प्रत्युत प्रवृत्तिलक्षणा का मूल या लिंग है इसलिये लिंगरूप होकर आगे होने वाली प्रवृत्तिमात्र का मापक है। जैसे सुषुप्तस्थान अवस्था प्रवृत्ति लक्षणा में लिंगरूप होकर मापक है कि यहां अवस्थाओं की प्रवृत्ति की आप्ति और उत्कर्ष नहीं है प्रत्युत प्रवृत्ति लक्षणा का मूल या लिंग है इसलिये लिंगरूप होकर आगे होने वाली स्वप्न आदि अवस्थाओं का मापक [प्रवर्तक और जनाने वाला] है एवं 'म्' वर्णरूप मात्रा भी प्रवृत्तिलक्षणा में लिंग रूप होकर मापक है कि यहां ध्वन्यात्मक मात्राओं की प्रवृत्ति की आप्ति और उत्कर्ष नहीं प्रत्युत प्रवृत्ति लक्षणा का मूल या लिंग है इसलिये लिंगरूप होकर आगे उच्चरित होने वाले उकारादि का मापक [प्रवर्तक और जनाने वाला] है ॥ वास्तव में 'म्' वर्ण ध्वन्यात्मक शब्दों का मापक, जापक, निमित्त और योनि इस प्रकार है कि जैसे किसी पुरुष में संस्कारशून्य दशा के अनन्तर कोई संस्कार आ जावे तो उस समय वह संस्कार आगे होने वाले भोग और कर्मों का मापक, जापक, निमित्त और योनि हो जाता है, एवं शान्त अवस्थित के [मुख खोलने को] 'म्' वर्ण सम्बन्धी होठों की स्फुरण होती है तब, यह होठों की स्फुरण में 'म्' वर्ण स्थित हुआ आगे उच्चरित होने वाले सारे वाग्विषय [शब्द] का मापक, जापक, निमित्त और योनि हो जाता है [कि कुछ उच्चारण करेगा या कहेंगा] सो ऐसा निश्चय है एवं शब्दार्थ में यह 'मिति' रूप समान होने से सिद्ध सम्बन्ध है। अपीतेः = निवृत्तिलक्षणा में अन्तिम होने से क्योंकि यहां निवृत्तिलक्षणा की आदिमत्ता और उभयत्व नहीं है प्रत्युत निवृत्तिलक्षणा का अन्तिम स्वरूप है। जैसे सुषुप्तस्थान अवस्था निवृत्तिलक्षणा में अन्तिम है क्योंकि यहां निवृत्तिलक्षणा की आदिमत्ता नहीं है और न ही उभयत्व है प्रत्युत अन्तिम स्वरूप है सो ऐसे ही 'म्' रूप मात्रा भी निवृत्तिलक्षणा में अन्तिम है क्योंकि यहां ध्वन्यात्मक मात्राओं की निवृत्ति की आदिमत्ता नहीं है और न ही उभयत्व है प्रत्युत अन्तिमस्वरूप है अतः 'अपीतित्व' शब्दार्थ में समान होने से 'अपीतेः' सम्बन्धज्ञान समीचीन है। (मिनोनि ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद) अवश्य ही निवृत्तिलक्षणा से मापक [निश्चय कर लेने वाला = जांच लेने वाला] हो जाता है। सबका प्रवृत्तिलक्षणा में सुषुप्तस्थान अवस्था और मकार [म्] मात्रा के समान। तथा निवृत्तिलक्षणा में अपने इन्द्रियादि संघातरूप संसार का अन्तिम स्वरूप सम्पादन कर लेता है जो कोई धीर पुरुष इस प्रकार वेत्ता या उपासक है ॥११॥

में है, अतः धारणा और ध्यान द्वारा एवं सुषुप्त अवस्था किंवा कारण शरीर में होकर सुषुप्तस्थानी ब्रह्म की उपासना युक्त है ॥ ११ ॥

तुरीयावस्थारूप भूमि—

अभ्यास से पूर्व १, २ या ३ बाह्याभ्यन्तराक्षेपी प्राणायाम करना चाहिये अर्थात् श्वास को बाहर निकाल कर बाहर रोक दो, पुनः वह जब अन्दर आना चाहे तो फिर बाहर को ही धक्का देकर बाहर रोको पुनः धक्का देकर बाहर रोको, एवं तीन धक्के दो तथा भीतर से रोक कर बाहर निकलते समय बाहर से भीतर लो एवं तीन बार अन्दर लो । पुनः तृतीय भूमि का अभ्यास करते-करते जब अव्यक्त अर्थात् जगत् के कारण प्रकृति से भिन्न निरुपाधि निर्विशेषण निर्गुण ब्रह्मात्मा के अनुभव की चतुर्थ भूमि के संस्कार उदय होने लगें अर्थात् प्रकृति के औपाधिक धर्मों का सहयोग शान्त होने तथा निज परिस्थिति में अपने आपको कारण-शरीर और सुषुप्तावस्था से पृथक् जैसा प्रतीत करने लगे तब ब्रह्मात्मा के साक्षात् की या ओंकारोपासना की तुरीय भूमि का अभ्यास इस प्रकार करना कि प्रथम ओम् का जप के अन्त अर्थात् ओ + उ + म् के समुदित ओम् के पश्चात् शान्तमय अवलम्बन को देर तक रखे और माण्डूक्योपनिषद् के “नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहृयं मप्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यम् । एकात्मप्रच्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः” ॥ ७ ॥ तथा “अमात्रचतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शान्तः शिवाऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैर्यं संशत्यविस्मनाऽऽमानं य एवो वेद य एव वेद” ॥ १२ ॥ मन्त्रों के अनुसार ब्रह्मास्तित्व का अनुभव करे । एवं जप और अर्थभावना के बारम्बार सहयोग से अस्मितानुगम और असम्प्रज्ञात समाधि से ब्रह्म के साक्षात् की तुरीय भूमि बनती है उसके आरम्भाभ्यास में अस्मितानुगम (सम्प्रज्ञात की अन्तिम समाधि) तथा आगे बढ़कर परिपक्वाभ्यास में असम्प्रज्ञात समाधि होती है । शिवरूप स्थिर आनन्द की प्राप्ति तथा स्वात्मा का ब्रह्म में प्रतिशय सम्बन्ध होकर मोक्ष का अधिकारी बन जाता है ।

(नान्तः प्रज्ञम्) इस समय चतुर्थावस्थायुक्त का वर्णन करते हैं कि चतुर्थ अवस्था वाले ब्रह्मात्मा को ‘अन्तः प्रज्ञ’ नहीं मानते हैं [“मन्यन्ते=मानते हैं” यह आगामी पद प्रत्येक के साथ सम्बन्ध रखता है] इसलिये कि अन्तःप्रज्ञ तो दूसरी अवस्था वाला है यदि तुरीय अवस्था वाले को भी अन्तःप्रज्ञ मान लें तो यह तुरीयपन विस्तार निरर्थक ही है अतः उसको अन्तःप्रज्ञ नहीं मानते (न बहिःप्रज्ञम्) ‘बहिःप्रज्ञ’ भी उसको नहीं मानते क्योंकि प्रथमावस्था वाले को ‘बहिःप्रज्ञ’ कह चुके पूर्व के समान निरर्थक विस्तार दोष है (नोभयतः प्रज्ञम्) और न ही दोनों से युक्त है (न प्रज्ञानघनम्) तथा न प्रज्ञानघन ही मानते हैं क्योंकि वह तृतीय अवस्था वाला कह चुका है अतः पूर्व जैसा दोष है (न प्रज्ञम्) न ज्ञानमात्र (नाप्रज्ञम्) न ही अज्ञान मात्र है ऐसा मानते हैं (अदृष्टम्) न नेत्रों से देखने वाला (अव्यवहार्यम्) न व्यवहार में लाने योग्य (अप्राह्यम्) न हाथ आदि अंगों के ग्रहण करने योग्य (अलक्षणम्) न लक्षण करने योग्य (अव्यपदेश्यम्) न प्रतिपादन करने योग्य है ऐसा मानते हैं “क्या इस तुरीय अवस्था वाले को ‘नेति-नेति’ नहीं है नहीं है ऐसा ही मानते हैं अथवा ‘अस्ति’ रूप है ।

हम तो सत्य ही कहेंगे !

—ऋषि दयानन्द

ऋषि दयानन्द के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है, सत्य का प्रचार । अपने-पराये का भेद भुलाकर उन्होंने सत्य ही कहा और असत्य का तीव्रतम खण्डन किया । आज कुछ गुमराह व्यक्ति हमें असत्य पर परदा पड़े रहने का उपदेश देते हैं । उनका कहना है कि खण्डन न किया जाये । अपनों के दोष न बताए जाएं । हम इस सम्बन्ध में कुछ न कह कर ऋषि दयानन्द के जीवन का एक पृष्ठ प्रस्तुत कर रहे हैं—

जब बरेली में अपने और परायों के खण्डन ने सभी को हिला दिया तब कमिश्नर ने ऋषि दयानन्द को कहलवाया कि कठोर खण्डन, कटु सत्य से काम न लें । तब ऋषि ने शाम को भाषण में कहा था —

“लोग कहते हैं सत्य को प्रकट न करो । कलेक्टर क्रोधित होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा । “अरे चक्रवर्ती राजा क्यों न अप्रसन्न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे !” इसके बाद उस उपनिषद् वाक्य को पढ़कर जिसमें लिखा है कि न आत्मा को हथियार छेदन कर सकता है, और न उसे आग जला सकती है, गर्जती हुई आवाज से बोले, “यह शरीर तो अनित्य है । इसकी रक्षा में प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है । इसे जिस मनुष्य का जी चाहे नष्ट कर दे ।” फिर चारों ओर अपनी तीक्ष्ण ज्योति डालकर सिंहनाद करते हुए कहा—“लेकिन वह वीर पुरुष मुझे दिखाओ, जो यह दावा करता है कि वह मेरे आत्मा का नाश कर सकता है । जब तक ऐसा वीर इस संसार में दिखाई नहीं देता, मैं यह सोचने के लिए भी तैयार नहीं हूँ कि मैं सत्य को दबाऊँ या नहीं ?

ऋषि दयानन्द की राह पर चलने का संकल्प लेकर बढ़ते हुए हम सभी से यही कहना चाहते हैं कि हम सदा सत्य ही कहेंगे । यदि कुछ असत्य हो तो बताइए । खण्डन का अस्त्र ही शुद्धि का डंका बजा सकता है । सत्य पर चल कर ही हम आर्यसमाज को ऋषि दयानन्द का आर्यसमाज बना सकेंगे । आर्यसमाज के हितैषी विद्वान बताएं कि क्या आज आर्यसमाज संगठन ऋषि दयानन्द की राह से भटक नहीं गया है ? भटकन सुधारने के लिए हमारा प्रयत्न जारी रहेगा । सत्य के लिए हमें मृत्यु भी स्वीकार है ।

—भारतेन्द्र नाथ

प्रश्न

पावन परम्परा के प्रतिमान नष्ट हुए,
 स्व 'कृण्वन्तो विश्वमार्यं' नारा है व्यवहार्य ॥
 भौतिक मरीचिका में मन-मृग खोये-ठगे,
 कला विभेद से भरा है हर एक कार्य ॥
 शिक्षा रवि अस्त लगे, भ्रष्टता के दांव फले,
 शिष्य हैं अशिष्ट बन, परिव्याप्त अनौदार्य ॥
 पथ-रूढ़ि अपनाये वेद से जो कोसों दूर,
 कैसे जग पायेंगे वे सारे सोये हुए आर्य ॥
 वेद का असीम ज्ञान रवि-रश्मि जाल बना,
 अन्तरिक्ष, भूमि पर बढ़ जम जायगा ।
 हर एक भाषा में सुभाष्य नवनीत वह,
 रुक्ष त्रस्त मानसों को पूर्ण सरसायगा ।
 संस्कृति की ध्वजा लिये वीरों का समूह बड़ा,
 ठोस अभियान का प्रभाव पनपायगा ।
 साम्यवाद - पूँजीवाद रहेंगे न अवशिष्ट,
 वस, तभी आर्यों का समूह जग जायगा ।
 परकीय भावनाओं के न क्रीतदास बनें,
 सजग स्वदेश की भलाई भुला पायें नहीं ।
 ऋषि दयानन्द की धरोहर बचाते हुए,
 नैतिक पवित्रता को यों ही सुला पायें नहीं ।
 फैशन परस्ती, स्वार्थ, नीचता न शेष रहे,
 सिक्कों की खनक पर मान तुला पायें नहीं ।
 दोष जुटा पायें नहीं, धर्म हटा पाये नहीं,
 नास्तिक परम्परा का रंग बुला पायें नहीं ।

भवदीय,
 केसरी गंज सीतापुर) —भैरव दत्त शुक्ल

गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी हरिद्वार की
औषधियां सेवन करें

❖❖❖ गुरुकुल कासारि ❖❖❖

खांसी की अपूर्व गुणकारी औषधि

उपयोग—किसी भी कारण से हुई खांसी, नजला, जुकाम आदि में लाभदायक है।

सेवन विधि:—दिन में तीन बार छोटी चम्मच लेकर उंगली से चाटें

आँखों के अनेक रोगों के लिए

संसार प्रसिद्ध

भीमसेनी-सुरमा

च्यवन प्राश

उत्तम, स्वादिष्ट, रसायन

शरीर को वलिष्ठ एवं कान्तिमान बनाता है।

शारीरिक क्षीणता तथा फेफड़ों के लिए प्रसिद्ध

आयुर्वेदिक रसायन

गुरुकुल कांगड़ी फार्मसी

पो० गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)

शाखा कार्यालय—चावड़ी बाजार, दिल्ली

अधिक से अधिक सत्यार्थप्रकाश वितरण
कर महर्षि का संदेश फैलाइए ।

अपनी
आवश्यकताओं
वर-वधू
नौकरी आदि
लिये
जनज्ञान
विज्ञापन दीजिए

GAYWAYS

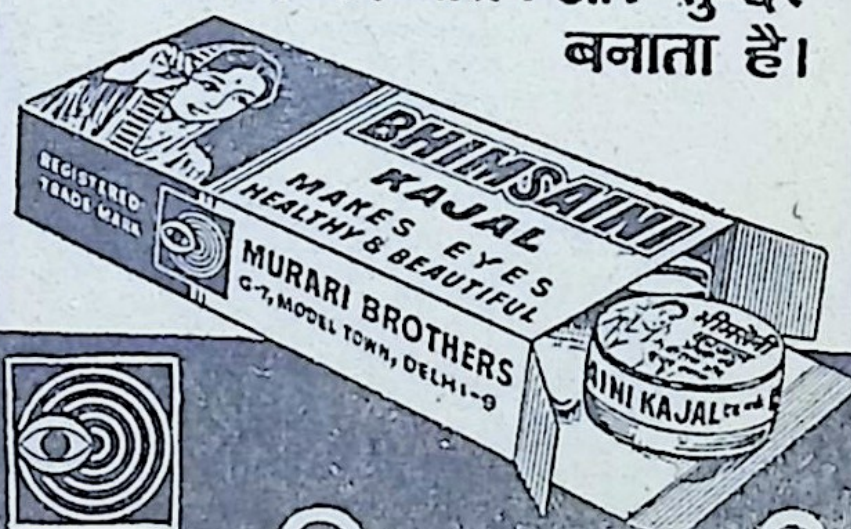


स्वस्थ और सुन्दर आंखों के लिये

भीमसेनी

काजल

आंखों को नीरोग और सुन्दर बनाता है।





मुरारी ब्रदर्स

G-7, मॉडल टाउन, देहली-9

धन भेजते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें ।
बी० पी० न मंगाएं । पत्र मिलते ही धन भेज दें । —सम्पादक

चारों वेदों का संपूर्ण भाष्य आप १०१)
में सुरक्षित करा सकते हैं ।

१२ रुपये सैकड़ा के उपयोगी प्रचार ट्रैक्ट

- | | |
|---------------------------------|--------------------------|
| १.—आर्यसमाज क्या मानता है ? | —मदनमोहन विद्यासागर |
| २.—विश्व को वेद का सन्देश | —भारतेन्द्र नाथ |
| ३.—महर्षि दयानन्द की विशेषतायें | —महात्मा नारायण स्वामी |
| ४.—आर्यसमाज की विचारधारा | —गंगाप्रसाद उपाध्याय |
| ५.—आर्यसमाज की मान्यताएं | —पं० रामचन्द्र देहलवी |
| ६.—निमन्त्रण आर्यसमाज का | —पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय |
| ७.—आर्यसमाज के दस नियम | —रघुनाथ प्रसाद पाठक |
| ८.—आर्य कौन ? | पं० हरिशरण |
| ९.—मूर्ति पूजा की हानियां | —महर्षि दयानन्द सरस्वती |

१६७४ की डायरी

२०० पृष्ठों—में संध्या हवन-प्रार्थना
मंत्रों सहित । सजिल्द; १५० रुपये सैकड़ा
अजिल्द १००) सैकड़ा

मंगाइये—और घर-घर में पहुंचाइए—

यजुर्वेद भाष्य : महर्षि कृत अब मिल रहा है

- १—सादी जिल्द : गत्ते की मूल्य १४)
२—बढ़िया पूरी जिल्द : उपहार के लिए १८)
प्लास्टिक कवर के लिए २) अलग लगेंगे ।



आवश्यक सूचना

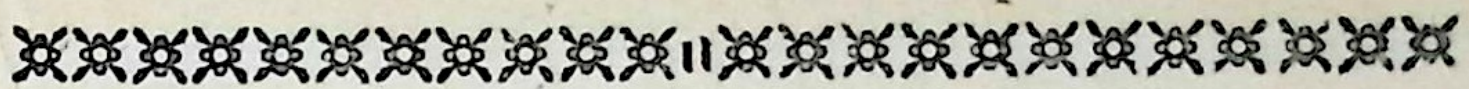
कागज : व जिल्द बंधायो के मूल्यों में इस बीच अत्यधिक वृद्धि हो जाने से हम सत्यार्थ प्रकाश के मूल्यों में न चाहते हुए भी परिवर्तन कर रहे हैं ।

- १—राज संस्करण : सजिल्द : ३२५) सैकड़ा
२—उपहार संस्करण : कपड़े की जिल्द
४००) सैकड़ा

आदेश धन सहित ही आने चाहिए

व्यवस्थापक

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-५



अत्यन्त-उपयोगी साहित्य

१. क्या वेद में मांस भक्षण का विधान है ?

“सरिता” में प्रकाशित भ्रमपूर्ण लेखों का प्रसिद्ध वैदिक अन्वेषक श्री शिवपूजन सिंह जी एम. ए. द्वारा दिया हुआ प्रामाणिक मुंहतोड़ उत्तर ।

मूल्य : ८० पैसे

२. ऋषि दयानन्द ने कहा था.....

महर्षि दयानन्द की अमर सूक्तियों का प्रचार के लिए अनुपम संग्रह ।

मूल्य : ४० पैसे

३. वेद और बाइबिल—

वेद मंत्र और बाइबिल के वचन दाएं बाएं पृष्ठों पर साथ-साथ दिये गए हैं । जिन्हें पढ़कर बिना किसी टिप्पणी के भी आप दोनों की तुलना करने में समर्थ हो सकते हैं । वेद की महत्ता प्रगट करने के लिए अनुपम ग्रंथ । पं० दीनानाथजी के श्रम का परिणाम ।

मूल्य : ७५ पैसे

४. धर्म ग्रन्थावलोकन—

मूल्य १) ५०

संसार के सभी मतों के संबंध में प्रामाणिक जानकारी । धर्म की वास्तविकता जानने के लिए अत्यन्त उपयोगी ग्रंथ ।



पता :—

दूरभाष : ५६६३३६

दयानन्द संस्थान १५६७ हरद्वारसिंह मार्ग

३१ नाई वाला, करौल बाग नई दिल्ली-५

फाल्गुन संवत् २०३०

८७

—शंकरसिंह वेदालंकार एम. ए.

क्या

आर्य समाज

विनाश के

कगार पर है ?

आज आर्यसमाज के सम्बन्ध में जो जन मानस में लहर है उसे हम प्रतिकूल न भी कहें तो अनुकूल कहना भी अत्यन्त कठिन है। सभी ओर से निराशाजनक विचार जब सुनने को मिलते हैं तो हृदय तड़प कर रह जाता है और एक क्षण के लिए सोचने पर विवश होना पड़ता है कि क्या सचमुच हम विनाश की ओर अग्रसर हो रहे हैं ? कोई कहता है कि अब आर्य समाज की आवश्यकता नहीं है, कोई कहता है कि आवश्यकता का प्रश्न तो तब उठता है जब आर्य समाज हो, जब है ही नहीं तो उसकी आवश्यकता का प्रश्न ही व्यर्थ है। कुछ लोग कहते हैं कि आर्यसमाज तो पहले था अब कहां रहा ? जब था तो उसके एक-एक सदस्य से पाखण्ड प्रकम्पित होता था। उसकी सदाचारिता, सत्यचारिता, सत्यनिष्ठा, कर्मठता और राष्ट्रीयता से राष्ट्र तरंगित बना रहता था। अब समाज में श्रद्धानन्द जैसे दूरदर्शी नेता और पं० लेखराम जैसे निःस्वार्थी तेजस्वी प्रचारक कहाँ रहे ? स्वामी दर्शनानन्द जैसों के तो दर्शन ही असम्भव हैं। आर्यसमाज की अस्मिता सुरक्षित रहे तो कैसे रहे ?

जो नवयुवक आर्यसमाज में हैं उनके हृदय में वर्तमान सामाजिकों से तथा उनकी गतिविधियों से अननुमेय विरोध है। उनके हृदय में विद्रोह के गोले हैं और कल्मष दग्ध कर देने वाली धधकती आग है। जब वे शिथिलता देखते हैं तो उनका मन विक्षुब्ध हो उठता है पर जब सामाजिक रूढ़िग्रस्त शृंखलाएँ अत्यधिक सुदृढ़ देखता है तो वह इस क्षेत्र से वैराग्य ले लेता है या फिर उदासीन हो जाता है अथवा विरोधी बन बैठता है।

हमारी शिक्षण संस्थाओं में इसका संस्कार होना चाहिये था इसी कारण ये संस्थाएँ खोली गयीं हैं। यह कहना मिथ्या न होगा कि आर्यसमाज की जितनी शिक्षण संस्थाएँ देश में कार्य कर रही हैं उतनी सम्भवतः अन्य किसी संगठन की नहीं। आर्यसमाज ने भारत की शैक्षणिक मेरुदण्ड को न केवल सीधा किया किन्तु उसको सुदृढ़ बनाया कि उसको भुकाने की किसी में सामर्थ्य नहीं रहे, अगर किसी ने असफल प्रयास किया भी तो वह अपने आप भुक गया। पर हमें इन शिक्षण

संस्थाओं से साक्षरता के अतिरिक्त और मिला क्या ? सैकड़ों डी० ए० वी० कालेज हैं पर कहीं भी सामाजिक वातावरण है ? नहीं, क्योंकि हमने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया ।

एक सार्वधिक सम्पन्न डी० ए० वी० संगठन ने सत्यार्थप्रकाश का लघु संक्षिप्त संस्करण निकाला है जो धर्मशिक्षा में निर्धारित है, पर उसमें इतनी कांट-छांट की गई है कि सत्यार्थप्रकाश के मूल प्रभाव की मूल ही उच्छिन्न हो गई है । महर्षि दयानन्द ने तो निर्भीकता का पाठ पढ़ाया था पर हम कायर बन बैठे, उनके ही ग्रंथों में सुधार प्रारम्भ हो गया है । ईसाई, मुसलमान, सनातनी, जैनी या अन्य धर्मावलम्बी छात्र कहीं विरोध न कर बैठें, इस कारण सत्यार्थप्रकाश का सत्यानाश कर दिया । किसी ईसाई ने बाइबिल में कांट छांट की ? क्या किसी मुसलमान ने कुरान में कुछ परिवर्तन किया अथवा किसी धर्मावलम्बी ने अपने मत ग्रन्थों का अभिनवीकरण किया ? नहीं पर हमने कर डाला क्योंकि हमें समन्वयवादी होने का भूत सवार है । और शिक्षण संस्थाओं के टूट जाने का भय समाया हुआ है । हमारी इस समन्वयी नीति ने इधर का रखा न उधर का, और हम नीम हकीम खतरे जान बन कर रह गये ।

हमारे कालेजों में करोड़ों रुपये खर्च होते हैं पर समाज के लिए क्या करते हैं ? मरी बछिया ब्राह्मण को दान करने की प्रवृत्ति हममें पनप रही है और करते भी ऐसा ही हैं । हम चाहते तो हमारे कालेजों से प्रकाशित साहित्य द्वारा बड़े-बड़े पुस्तकालय भर जाते और आर्य समाज द्वारा जन-जन में सत्य भावना हिल्लोलित हो उठती पर पता नहीं हममें वर्ण संकरी सन्तानें कहाँसे आ गयीं ?

भारत में जितने भी डी० ए० वी० कालेज हैं । क्या उनमें एक-एक सुयोग्य विद्वान् तथा एक भजनोपदेशक प्राध्यापकों के वेतनमान पर नहीं रखा जा सकता ? क्या यहाँ से प्रतिवर्ष एक दो शोधग्रन्थ नहीं निकल सकते ? क्या इन शिक्षण संस्थाओं में आर्य समाजी वातावरण नहीं पैदा किया जा सकता ? संभव तो सब कुछ है यदि बगुला भक्ति छोड़ कर काम करें ? हम अन्दर से कुछ हैं बाहर से कुछ हैं । यह कटु सत्य है पर हमें इसे स्वीकार कर अनागत निर्मित की ओर अग्रसर होना पड़ेगा । और ठोस नीतियों को निर्धारित कर तदनुरूप कार्य भी करना पड़ेगा तभी हम अपने उद्देश्य में सफल हो सकेंगे । इस समय हमारी प्रतिनिधि सभाओं में जो पद का व्यामोह बैठा हुआ है और उसके फल स्वरूप जो उखाड़ पछाड़ हो रही है वह न तो आर्य मर्यादा के अनुकूल है और न ही स्वात्म गौरव की संरक्षिका । जब हमारी ही न्याय सभाएँ असफल हो जाएँ तो सरकारी न्यायलयों में हजारों रुपयों को बरवादी के अतिरिक्त और क्या मिल सकता है ? इन सभाओं की स्थापना वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार तथा राष्ट्रीयता को जागृत करने के लिए की गई थी पर स्वार्थ के कीचड़ में सनेनाम धारी नेताओं ने उसको भी नाश कर डाला । जिन सभाओं के उपदेशक भीख माँगते फिरें क्या उन्हें हम जीवित कह सकते हैं ? क्या हमारे जीवन का यही लक्षण है ? यदि नहीं तो क्या हमारी बुद्धि को लकवा मार गया है ? जो हम स्वार्थ भाव छोड़कर और संगठित होकर नहीं बैठते तथा अनागत निर्माण के लिए सजग नहीं होते ?

राष्ट्र को विध्वस्त करने वाली न जाने कितनी अधार्मिक संस्थाएँ तैयार हो चुकी हैं और उनका प्रचार प्रसार भी विद्युत गति से दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। इन वेहूदी संस्थाओं से राष्ट्र का क्या कल्याण होगा जिनके कर्णधार ही सरकारी विधानों की जंजीरों में जकड़े पड़े हैं। उन्हें तो कारावास की काल कोठरियाँ ही पर्णकुटियाँ बनानी पड़ रही हैं।

भारत के प्रबुद्ध वर्ग में भी यह विश्वास पत्थर की चट्टान के समान सुदृढ़ है कि इस विघटित और शिथिलित अवस्था में भी आर्य समाज अरण्य के प्रहरी के समान पाखण्ड रूपी मृगों के आखेट की विजयनी शक्ति रखता है। जब भी यह अंगड़ाई लेकर दहाड़ता है तो पाखण्डी शृंगालों का कहीं पता नहीं चलता। बुद्धिवादी तर्कतीरों में निष्णात यह समाज आज किस निद्रा में सो रहा है। प्रशान्त महासागर को उलीच कर फेंक देने वाली यह महाशक्ति क्या संज्ञा-हीन हो गई है? हिमालय की चोटियों को अपने पैरों से रगड़ने वाली ये सन्तानें आज कहाँ डूबी जा रही हैं? सबका अवलम्बन लेकर चलने वाले असत्य के अंगारों में क्यों दहके जा रहे हैं? दैवी धाराओं वाले मनु-पुत्र आज आसुरी प्रवृत्तियों की ओर क्यों खिंचे जा रहे हैं?

देखो, चारों ओर से पाखण्डों की तमा अपना अधिकार जमाती दौड़ी चली आ रही है। नये भगवदावतारों से भारत का भाग्य फूट-फूट कर रो रहा है। विधाता की कल्याणी सृष्टि कालसर्पणी काली के समान खाने को दौड़ती चली आ रही है। मानवों की मानवता मर गई है। दानवों की दानवता दहाड़ रही है। सत्पुरुषों का तिरस्कार, दुराचारी रंगे सियारों का सत्कार हमें पतित करता जा रहा है। हम विनाश के गाल में प्रविष्ट होते जा रहे हैं।

आओ हम संगठित होकर अपना और अपनी संस्थाओं का संस्कार करें जो त्रुटियाँ हैं उन्हें ठीक करें। आगे की योजनाएँ सफल बनाने का व्रत लें और सदैव यह याद रखें कि

हम नाश का भी नाश कर, निर्माण का पथ खोल दें।
जीवन भरा हममें अमित, सर्वत्र जय ध्वनिबोल दें ॥

बढ़ता हुआ अंधेरा उजाले को निमंत्रण दे रहा है। निराशा आशा को पुकार रही है। समय आ गया है कि धर्म की रक्षा के लिये आर्य पुत्रों की टोलियाँ सिर पर कफन बांध कर कर्म क्षेत्र में आयें। सत्य धर्म और मानवता की रक्षा के लिये हम सर्वस्व की आहुति देकर भी शंख ध्वनि फूँके। विश्वास रखो विजय सत्य की होगी।

—भारतेन्द्र नाथ

दर्शन का उद्देश्य

श्री सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम० ए० एल० टी०

दर्शन जीवन की प्रेरणा का उद्गम और प्राण है। मानव इतिहास का निर्माता भी वास्तव में दर्शन ही है। दर्शन को सरल रूप से प्रस्तुत करने के लिए यह लेखमाला हम आरम्भ कर रहे हैं। विश्वास है, कि विज्ञ पाठक पसन्द करेंगे।

‘दर्शन’ शब्द ‘दृश् + भावेत्युट्’ का विस्तृत अर्थ है देखना अर्थात् किसी वस्तु के वास्तविक तत्त्व को जानना। संसार में अनन्त वस्तुएँ हैं, अतः दर्शन का क्षेत्र भी अत्यन्त व्यापक है। दर्शन का क्षेत्र वस्तुओं तक ही सीमित नहीं, वस्तुओं के अभाव, सत्य और असत्य जितनी भी वस्तुएँ हैं, दर्शन उन पर भी विचार करता है। उदाहरण के लिए घटाभाव आदि वस्तुएँ भी दर्शन के क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं। अंग्रेजी में दर्शन को फिलोसफी कहते हैं। ‘फिलोसफी’ शब्द का भाव भी दर्शन शब्द की भांति सभी ज्ञान, अज्ञान, सत्य, असत्य तथा शून्य और अभाव के विषय में ज्ञान प्राप्त करना है। पश्चिमी देशों में जब ‘फिलोसफी’ शब्द बनाया गया तब उसका अर्थ था—

Philosophy—Love of wisdom और Wisdom—Knowledge and Love together.

इससे स्पष्ट है कि विजडम (बुद्धि) जो ज्ञान और प्रेम के योग का ही नाम है। उसीके प्रेम का नाम फिलोसफी है। अर्थात् फिलोसफी का अर्थ है ज्ञान के प्रति प्रेम उत्पन्न करना। ‘ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः’ ज्ञान के बिना मुक्ति संभव नहीं। मुक्ति के बिना मनुष्य को अक्षय और अपूर्व आनन्द की प्राप्ति संभव नहीं। मनुष्य के जीवन का उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति है। इसलिए जीवन का उद्देश्य मनुष्य को आनन्द प्राप्त करवाना है। इस विषय को स्पष्ट करने के लिए हम इस प्रकार कह सकते हैं कि ‘दर्शन का उद्देश्य’ क्या है इस विषय पर विचार करने से पूर्व हमें यह सोचना चाहिए कि दर्शन मानव जीवन का साध्य है या साधन? साधन उसे कहते हैं जिसके द्वारा साध्य को प्राप्त किया जाता है। इस दृष्टि से हमें यह सोचना होगा कि क्या ज्ञान के प्रति प्रेम उत्पन्न करना ही मानव जीवन का उद्देश्य है अथवा इस ज्ञान के प्रति प्रेम के द्वारा मानव जीवन के अन्तिम लक्ष्य आनन्द की प्राप्ति के लिए मनुष्य को योग्य बनाना दर्शन का उद्देश्य है। हमारा विचार है कि दर्शन मनुष्य को इस योग्य

बनाता है कि वह ज्ञान के प्रति प्रेम धारण को इस अन्तिम उद्देश्य आनन्द को प्राप्त कर सके ।

इस पर हम जरा गहराई से विचार करें तो हमें पता चलेगा कि मनुष्य का शरीर पांच कोशों से बना है ।

(१) अन्नमय कोश (२) प्राणमय कोश (३) मनोमय कोश (४) विज्ञानमय कोश (५) आनन्दमय कोश इनमें से प्रथम दो कोश अन्नमय कोश और प्राणमय कोश मनुष्य को कर्म करने योग्य बनाते हैं । वास्तव में यह दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं । अन्नमय कोश यह हमारा बाहरी शरीर है । गीता में कहा गया है 'अन्नाद् भवन्ति भूतानि' अन्न से प्राणियों की उत्पत्ति होती है और वह प्राणी तब तक कार्य नहीं कर सकते जब तक उनमें प्राण न हो । इस प्रकार यह दोनों कोश मनुष्य को कर्म करने के योग्य बनाते हैं ।

मनोमय कोश, विज्ञानमय और आनन्दमय कोश मनुष्य के अन्तिम उद्देश्य और ध्येय की पूर्ति के साधन है । इन्हीं अन्तिम कोशों के कार्य का नाम ही दर्शन है । मनोमय कोश बहिर्मुखी वृत्ति करते हैं । इसका तात्पर्य यह है कि मनोमय कोश निचले मन के द्वारा संसार में घटित घटनाओं और उनके पारस्परिक सम्बन्ध का अध्ययन अर्थात् कार्य का ज्ञान प्राप्त करना है । काण्ट ने इसका नाम Phenomena (दृष्टि विषयक) रखा है । अर्थात् कार्य का ज्ञान प्राप्त करना मनोमय कोश का नाम है । यह बाह्य वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करता है ।

विज्ञानमय कोश इससे सूक्ष्म है । यह विज्ञानमय कोश उच्च मन के द्वारा, जिसका नाम बुद्धि है, संसार में घटित घटनाओं के कारण पर विचार करना अर्थात् कारण का ज्ञान प्राप्त करना । मनोमय कोश द्वारा संसार की वस्तुओं का बाह्य रूप हम देखते हैं, उसका उपयोग करते हैं, घटित घटनाओं के पारस्परिक सम्बन्धों को समझते हैं । परन्तु, उसका कारण क्या है ? किस वस्तु से बनता है यह समझने के लिए हमें बुद्धि का प्रयोग करना पड़ता है और कारण समझना पड़ता है । हमें रोग हो गया तो बहिर्मुखी वृत्ति द्वारा हम समझेंगे कि जब इन्फ्लुएंजा होगा तो खांसी होगी । पर विज्ञानमय कोश बुद्धि के द्वारा इन्फ्लुएंजा के कारण समझेगा, उसे दूर करने का प्रयत्न करेगा । काण्ट ने इसका नाम Noumena रखा है, यही Intellect बुद्धि या ज्ञान है । कहने का भाव यह है कि दर्शन बाह्य संसार की वस्तुओं पर विचार करेगा, दर्शन बाह्य या आन्तरिक जगत् के होने वाले कार्यों के काम पर विचार करेगा और वह आनन्द—वास्तविक सुख को उपलब्ध कराने वाले प्राणों को पुष्ट करने की प्रेरणा बुद्धि द्वारा देगा ।

वास्तव में विज्ञानमय कोश, मनोमय और आनन्दमय कोशों को बीच में दीवार की तरह से दोनों को अलग करता है । अलग करने वाली वस्तु दोनों में मेल कराने वाली भी होती है । इसलिए विज्ञानमय कोश दोनों में मेल रखने वाला है । दर्शन का काम है कि मनोमय कोश को विज्ञानमय कोश की ओर और विज्ञानमय कोश को आनन्दमय कोश की ओर ले जाने की प्रेरणा दे ।

आनन्दमय कोश का मतलब है, इसमें अविद्या को दूर कर ज्ञान या विद्या की प्राप्ति द्वारा अन्तर्मुख वृत्ति (Intuition) का जागृत होना या आत्माध्ययन करना है ।

ज्ञान का कोई भी क्षेत्र क्यों न हो, उसके पीछे-पीछे जाकर, उसके अन्तिम छोर पर जो पहुँच जाता है, जो परमोच्च स्थान प्राप्त कर लेता है वही ऋषि है। जिसकी दृष्टि पैसे पर या सुख पर होती है वह कभी भी इस प्रकार से फन्दे में नहीं पड़ेगा। तपस्वी और आत्मद्रष्टा ही ज्ञान प्राप्त करता है। चाहे ज्ञान हो, चाहे विज्ञान, उसे प्राप्त करने के लिए, उसे जीवन में उतारने के लिए—महात्मा ही मरते रहते हैं। ज्ञानोपकार, बुद्धि द्वारा कार्य कारण को समझने वाला अन्वेषक आगे बढ़ता रहेगा। विना ज्ञान देवता के दर्शन किए वह नहीं रुकेगा। जीवन के अनेक-नेक क्षेत्रों में बहुत से अनुसन्धान की आवश्यकता है। ज्ञान के अनुसंधान में खाना-पीना सब कुछ भूल जाने वाला व्यक्ति ही आत्म द्रष्टा होता है। उसे कोई भी भौतिक वेदना कष्ट नहीं पहुँचा सकती। भारत के कपिल, कणाद, गौतम आदि ऋषियों के पास कौन से भौतिक सुख के साधन थे? पर उन्होंने आत्म ज्ञान प्राप्त कर लिया था अतः उन्हें सब कुछ प्राप्त था। न्यूटन ऋषि ही था। ५० वर्ष तक मनन करके नई दृष्टि देने वाला कार्ल मार्क्स मनीषी ही था। संसार के विचारों में क्रान्ति करने वाले चार्ल्स डार्विन को कौन महान् नहीं कहेगा? इंग्लैंड में एक वीराने रहकर सहयोग के नए मार्ग संसार को दिखाने के लिए प्रयत्न करने वाला क्रोपाटकिन को यदि मार्गदर्शन न कहें तो क्या कहें? आनन्दमय कोश द्वारा मनुष्यों का निर्माण ही दर्शन का उद्देश्य है।

मनुष्य के कष्ट का कारण क्या है? अविद्या के कारण ही मनुष्य को कष्ट होते हैं? अविद्या किसे कहते हैं? अविद्या का क्या लक्ष्य है—

अनित्याशुचि दुःखानात्मसु नित्य शुचि सुखात्मव्यातिरविद्या ॥

पात० दर्शन साधन पाद १ सू० ५ ।

यह योग सूत्र का वचन है। जो अनित्य संसार और देहादि में नित्य अर्थात् जो कार्य जगत् देखा सुना जाता है, सदा रहेगा, सदा से है और योगबल से यही देवों का शरीर सदा रहता है वैसी विपरीत बुद्धि होना अविद्या का प्रथम भाग है। अर्थात् मनुष्य इस संसार में रहता हुआ अज्ञान के कारण जो भेरा नहीं, जो हमेशा रहने वाला नहीं है, उसे हमेशा रहने वाला समझ कर आचरण करता है। परिणाम होता है कि हम जरा जरा सी बातों के लिए एक दूसरे से युद्ध करते हैं, एक दूसरे से लड़ते हैं, एक दूसरे की वस्तुओं को अन्याय और अत्याचार के बल पर छीनते हैं—अधिकार करते हैं। यह अविद्या का प्रथम भाग है।

अशुचि अर्थात् मलमय स्त्री आदि के शरीरों तथा मिथ्या भाषण चोरी आदि अपवित्र कार्यों को पवित्र समझना अविद्या का दूसरा रूप है। देखिए मानव शरीर मलमूत्र ही का समुदाय तो है परन्तु इसे पवित्र समझ लिया जाता है, इसकी पालना के लिए जीवों को मारना, असत्य भाषण करना, झूठ बोलना, चोरी करना आवश्यक समझ लिया जाता है। इसी प्रकार सत्यविद्या ब्रह्मविद्या, सत्संग, प्रभुभजन, परोपकार को ढोंग समझ कर इनके विरुद्ध कथन करना अविद्या है।

अविद्या का तीसरा रूप दुःख को सुख और सुख को दुःख समझना है। जितने भोग विलास, विषय आदि हैं वे सब दुःख ही हैं परन्तु उन विषयों की पूर्ति के लिए मानव इतना लिप्त हो जाता है कि उनसे निकलना अत्यन्त कठिन हो जाता है। कहा भी है 'आपातरम्या विषया पर्यन्त परितापितः' विषयों में सुख नहीं, अन्त

में वे दुःखदायक हैं। वे जब भोगे जा रहे होते हैं, तब तो अच्छे लगते हैं किन्तु अन्त में कष्ट देने वाले होते हैं। यह प्रत्येक का अनुभव है पर मनुष्य उसे छोड़ता नहीं। तृष्णा, काम, क्रोध, मोह, लोभ, शोक, ईर्ष्या, द्वेष आदि ऐसे विषय हैं जिनमें पड़कर मनुष्य गीली लकड़ी की तरह सदा जलता ही रहता है, फिर भी वह इन्हीं के पीछे पड़ा रहता है कि अब सुख मिलेगा, परन्तु सुख के स्थान पर दुःख ही पल्ले पड़ता है। यह विषय दूर से अच्छे लगते हैं। भर्तृहरि जी के वैराग्य के अनेक कारणों में एक कारण यह भी था कि जिस समय रात को चांदनी खिली थी, हरी भरी घास पर किसी ने पान खाकर थूक दिया था। वह बुदबुदाकार बनकर चांदनी के पड़ने से एक मनोरम रत्न की तरह घास पर चमक रहा था। भर्तृहरि जी ने रत्न समझकर जब उसे पकड़ा तो उनके हाथ में चिन्चिपा थूक लगा रह गया। इसी प्रकार विषयों से सुख प्रतीत होने की आशा होती है, पर वह आशा निराशा में ही बदल जाया करती है, इसे अविद्या का तृतीय रूप कहा जाता है।

चौथा रूप अविद्या का यह है कि अनात्म अर्थात् देह में आत्मा की बुद्धि कर लेना दुःख का कारण है। दर्शन के द्वारा मनुष्य अनित्य, अशुचि, दुःख और अनात्मा के स्थान पर नित्य, पवित्र, सुख और आत्मा समझना दुःख का मूल कारण है। जब दार्शनिक इस वास्तविकता को समझा देता है तब साधक भौतिक पदार्थों में अपने आपको आत्मा अनुभव कर लेता है और ध्यान अवस्था में पहुँचकर, जब आत्म स्वरूप का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब कहा जाता है कि यह तत्त्वज्ञानी होगा। अथर्ववेद के १०।८।२६ मंत्र में कहा गया है—

इयं कल्पाप्यजरामर्त्यस्थागृत गृहे ।

यस्मैकृता । शये स यश्चकार जरार सः ।

कल्याण करने वाला यह आत्म देवता अमर है और मर्त्य प्राणी के घर अर्थात् शरीर में रहता है। जिसे आत्म बोध हो जाता है, वह सुख प्राप्त करता है। और जो पुरुषार्थ करता है वही स्तुति करने योग्य बनता है।

ऋग्वेद के पहले मंडल के १६३ सूक्त मंत्र ११ के कहा गया है:—

तव शरीरं पतयिष्यवन्तव चित्तं वात इव ध्रुजीमान् ।

तव शृगाणि विष्ठता पुरुत्रारण्येषु जर्भुरारः चरन्ति ॥

अर्थात् हे आत्मन् ! तेरा शरीर पतनशील, विनान् है। शरीर तेरा चित्त वेगवान् वायु के तुल्य अति चंचल है। तेरे पुष्ट इन्द्रिय रूपी सींग बहुत बड़े बड़े विषय वासनारूपी जंगलों में विशेष स्थिरता से विचरण करते हैं। बुरी तरह वासनाओं के वन में फंसे हुए हैं। परन्तु, आत्मा तो इनसे पृथक् यही ज्ञान धारण कराना है।

इस प्रकार दर्शन मनुष्य में विवेक बुद्धि उत्पन्न करता है और वह निश्चय करा देता है कि ईश्वर, जीव, प्रकृति का वास्तविक स्वरूप क्या है? तीनों अनादि हैं। इन तीनों में अन्तर इतना ही है कि प्रकृति केवल सत् है। वह चेतन नहीं। जो चेतन नहीं न तो वह आनन्द का अनुभव करती है, न स्वयं आनन्द दे सकती है। जीवात्मा सत् और चित् दोनों है। परन्तु वह दुःख और सुख दोनों का अनुभव कर सकता है। और परमात्मा सत्, चित्, आनन्द स्वरूप है। इस संपूर्ण तत्त्व का ज्ञान दर्शन कराता। वह विवेक देता है और विवेक प्राप्ति से हम आत्माध्ययन कर आनन्द की ओर बढ़ते हैं। उसे प्राप्त करते हैं—यही दर्शन का उद्देश्य है। ●

जन-ज्ञान प्रकाशन का १०६ वाँ पुष्प

॥ ओ३म् ॥

पातञ्जल-योग-शास्त्र



संक्षिप्त संस्करण



योग के संबंध में पातञ्जलि ऋषि
का महत्वपूर्ण मार्ग दर्शन

—प्रकाशक—

दयानन्द - संस्थान
नई दिल्ली

फाल्गुन संवत् २०३०

६५

जन-ज्ञान प्रकाशन का १०७ वाँ पुष्प

दूरभाष : ५६६६३६

प्रकाशक—

जन-ज्ञान-प्रकाशन

१५६७, हरद्वानसिंह मार्ग

नई दिल्ली-५



सजिल्द मूल्य ८० पैसे



संसार में सत्य-धर्म-ज्ञान का संदेश
प्रसारण के लिए

दयानन्द-संस्थान द्वारा प्रकाशित
हिन्दी व अंग्रेजी में अलग-अलग
“जन-ज्ञान” (मासिक) के सदस्य बनिए !



वार्षिक मूल्य १५)

आजीवन २०१)

संपादक

जन-ज्ञान [मासिक] नई दिल्ली-५

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

अर्थ—वह (परमात्मा) पूर्ण है और यह (विश्व रूप उसकी महिमा) पूर्ण है, क्योंकि पूर्ण से पूर्ण उत्पन्न होता है, पूर्ण से पूर्ण निकाल डालने से पूर्ण ही शेष रहता है ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ॥१॥

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ।

सर्वः सर्वमवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु ॥२॥

दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात् ।

शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत् ॥३॥

क्षमेऽहं सर्वान् वै जीवान् ते च क्षाम्यन्तु मां सदा ।

मैत्री स्यात् सर्वभूतेषु न मे द्वेषोऽस्ति केनचित् ॥४॥

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।

कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम् ॥५॥

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्ताम्,

न्याय्येन मार्गेण सहो महोशाः ।

गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यम्,

लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥६॥

अर्थ—सब सुखी हों, सब नीरोग हों, सबका कल्याण हो, कोई दुःखी न हो ॥१॥ सब दुःखों से पार हों, सब कल्याण को देखें, सबको सब कुछ प्राप्त हो, सब सभी जगह आनन्दित रहें ॥२॥ दुर्जन सज्जन हो जायें, सज्जन शान्ति प्राप्त करें, शान्त बन्धन से मुक्त हों, और मुक्त दूसरों को मुक्त करें ॥३॥ मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ, सब जीव मुझे क्षमा करें, सब भूतों से मेरी मित्रता हो, किसी से द्वेष न

हो ॥४॥ न मैं कामना करता हूँ राज्य की, न स्वर्ग की, न मोक्ष की, कामना करता हूँ कि दुःख से पीड़ित प्राणियों का दुःख नष्ट हो ॥५॥ प्रजा का कल्याण हो, राजा लोग न्याय से उनको पालें, गौ (आदि सर्व उपकारी पशु) और ब्रह्मनिष्ठ (प्राणी मात्र के हित चाहने वाले) विद्वानों का कल्याण हो । सब लोग सुखी रहें ॥६॥

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं॑ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः
शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्ति
ब्रह्म शान्तिः सर्वं॑ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्ति-
रेधि । (यजु० ३६—३६)

अर्थ—द्युलोक शान्ति दे, अन्तरिक्ष शान्ति दे, पृथ्वीलोक शान्ति दे, जलप्राण शान्ति देवें, रोगनाशक ओषधियाँ शान्ति देवे, भोज्य वनस्पतियाँ शान्ति देवें । सबके सब देव शान्तिदायक होवें, ज्ञान शान्ति देवें, सभी कुछ शान्ति ही देवे, शान्ति भी सचमुच शान्ति ही होवे, वह ऐसी शान्ति मुझे प्राप्त होवे ।

कपिल मुनि प्रणीत सांख्य

तत्त्व समास सूत्र

—:०:—

अथातस्तत्त्व समासः ॥ १ ॥

अर्थ—अब (दुःखों को निवृत्ति का साधन तत्त्वों का यथार्थ ज्ञान है) इसलिए तत्त्वों को संक्षेप से वर्णन करते हैं ।

संगति :—दुःख निवृत्ति की इच्छा और प्रयत्न करने वाले का दुःख स्वभाविक धर्म नहीं हो सकता, क्योंकि यदि ऐसा होता तो वह उसकी निवृत्ति का यत्न ही नहीं करता । इससे सिद्ध होता है कि दुःख-निवृत्ति की इच्छा करने वाले से भिन्न उससे विपरीत धर्म वाला कोई दूसरा तत्त्व है, जिसका स्वाभाविक धर्म दुःख और जड़ता है । यदि यह कहा जाय कि दुःख-निवृत्ति की इच्छा और प्रयत्न करने वाला ही एक अकेला चेतन तत्त्व है । उससे भिन्न कोई दूसरा तत्त्व नहीं है । दुःख की प्रतीति अविद्या, अज्ञान, भ्रम, अथवा माया से होती है तो यह अविद्या, अज्ञान और माया भी स्वयं किसी भिन्न तत्त्व के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं जिसके ये स्वाभाविक धर्म हैं ।

यदि यह कहा जाय कि यह चेतन तत्त्व से अतिरिक्त और कुछ नहीं है, तो यह स्वाभाविक धर्म होने से दुःख की कभी भी निवृत्ति नहीं हो सकेगी । और उसके लिए किसी भी प्रकार का यत्न करना व्यर्थ होगा । यदि ऐसा माना जाय कि उस चेतन तत्त्व को ठीक ठीक न जानने से यह भ्रम इत्यादि हो रहा है यथार्थ रूप से सब भ्रम और दुःखों की निवृत्ति हो जाती है, तो इससे भी किसी भिन्न तत्त्व की सिद्धि होती है । क्योंकि जानना किसी दूसरी वस्तु का होता है । सबके जानने वाले को किससे जाना जा सकता है ।

यथा:—“विज्ञातारमरे केन विजानीयात्”

इससे सिद्ध होता है कि चेतन तत्त्व से भिन्न एक जड़ तत्त्व है । उसका यथार्थ रूप समझने के लिए अगले दो सूत्रों में उसको २४ अवान्तर भेदों में विभक्त करके दिखलाते हैं ।

अष्टौ प्रकृतयः ॥ २ ॥

षोडश विकाराः ॥ ३ ॥

अर्थः—(जड़ तत्त्व के प्रथम दो भेद प्रकृति और विकृति हैं, उनमें से) आठ प्रकृतियां हैं :—प्रधान अर्थात् मूल प्रकृति, महत्त्व, अहंकार और पांच तन्मात्रायें अर्थात् शब्द तन्मात्रा, स्पर्श तन्मात्रा, रूप तन्मात्रा, रस तन्मात्रा और गंध तन्मात्रा; और १६ विकृतियां हैं—पांच स्थूल भूत आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी और ग्यारह इन्द्रियाँ अर्थात् पांच ज्ञानेन्द्रियाँ श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण और पांच कर्मेन्द्रियाँ, वाणी, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा और ग्यारहवां मन ।

संगतिः—उपरोक्त रीति से जड़ तत्त्व के अवान्तर भेदों का अनुभव करने के पश्चात् जो चेतन तत्त्व शेष रह जाता है उसका वर्णन अगले चौथे सूत्र में करते हैं । उसके दो भेद हैं एक जड़ तत्त्व से मिला हुआ अर्थात् मिश्रित शबल=अपर=सगुणस्वरूप, दूसरा शुद्ध=पर=निर्गुण स्वरूप । मिश्रित के भी दो भेद हैं ।

एक व्यष्टि रूप से अनन्त शरीरों (पिण्डों) के सम्बन्ध से, दूसरा समष्टि रूप से सारे ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध से । इन तीनों भेदों का वर्णन एक पुरुष शब्द से अगले सूत्र में करते हैं ।

पुरुषः ॥४॥

पच्चीसवाँ चेतन तत्त्व पुरुष है जो तीन अर्थों का बोधक है ।

(१) चेतन तत्त्व व्यष्टि (पिण्ड) शरीरों से मिश्रित यथाः—

स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः ।

तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः ।

अमृतो हिरण्यमयः ॥

अर्थ—यह जो हृदय के अन्दर आकाश है उसमें यह पुरुष है जो मन का मालिक अमृत और ज्योतिर्मय है । अन्तःकरणों के अनन्त और परिच्छिन्न होने से ये पुरुष अनन्त और परिच्छिन्न कहलाते हैं । और परिच्छिन्नता के कारण अल्पज्ञ हैं । इनकी संज्ञा जीव भी है । इनकी अपेक्षा से चेतन तत्त्व आत्मा कहलाता है ।

(२) चेतन तत्त्व (ब्रह्माण्ड) समष्टि जगत् से मिश्रित यथाः—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥

(श्वेता० ३। १४)

अर्थ:—वह पुरुष हजारों शिर, हजारों नेत्र और हजारों पांव वाला है। वह इस ब्रह्माण्ड को चारों ओर से घेरकर भी दश अङ्गुल परे खड़ा है। समष्टि अन्तःकरण के एक और विभु होने से वह एक और सर्वव्यापक है। और सर्वव्यापकता के कारण सर्वज्ञ है। इसकी संज्ञा ईश्वर—पुरुषविशेष-सगुणब्रह्म—अपरब्रह्म और शबल ब्रह्म है। इसकी अपेक्षा से चेतन तत्त्व परमात्मा कहलाता है।

(३) शुद्ध चेतन तत्त्व जड़ तत्त्व से निखरा हुआ केवल शुद्ध ज्ञान-स्वरूप है। यथा:—

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पुरुषः ।

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।

(ऋ० १० । ६० । ३)

अर्थ:—यह इतनी बड़ी तो उसको महिमा है। पुरुष (परमात्मा शुद्ध चेतन तत्त्व) इससे कहीं बड़ा है। सारे भूत इसका एक पाद हैं। उसके तीन पाद अमृत स्वरूप अपने प्रकाश में हैं। इसकी संज्ञा शुद्धब्रह्म=निर्गुण-ब्रह्म=पर ब्रह्म और परमात्मा है। यह जड़ तत्त्व की सारी उपाधियों समष्टि, व्यष्टि, एकत्व, बहुत्व, इत्यादि से परे केवल शुद्ध ज्ञान स्वरूप है। व्यष्टि अन्तःकरणों के समष्टि अन्तःकरण के साथ सम्बन्धित होने से जीव ईश्वर का ही अंश है।

संगति—शंका—जैसे अव्यक्त प्रधान, व्यक्त महत्तत्त्वादि का उपादान कारण हो सकता है वैसे ही ज्ञान स्वरूप चेतन तत्त्व जड़ तत्त्व का उपादान कारण हो सकता है। इस लिए जड़ तत्त्व का चेतन तत्त्व से पृथक् मानना ठीक नहीं।

समाधान:—जड़तत्त्व प्रधान अव्यक्त अर्थात् मूल प्रकृति त्रिगुणात्मक है। सत्त्व, रजस्, तमस् इन तीन गुणों की न्यूनाधिकता से विषमता को प्राप्त होती हुई वह चौबीस अवान्तर भेदों में विभक्त हो रही है किन्तु चेतन तत्त्व निर्गुण शुद्ध ज्ञान स्वरूप है, जिसमें न कोई विषमता हो सकती है, न परिणाम।

शंका:—उसको त्रिगुणात्मक माया से जगत् की उत्पत्ति हो सकती है।

समाधानः—यह केवल शब्दों का अदल बदल है अर्थात् ऐसा मानने में माया शुद्ध चेतन तत्त्व से भिन्न जगत् का उपादान कारण ठहरेगी । यदि माया को शुद्ध चेतन तत्त्व (निर्गुण निराकार शुद्ध ब्रह्म) से अभिन्न उसकी ही एक अनिर्वचनीय शक्ति मान लिया जावे तो परब्रह्म में द्वैत की सिद्धि होगी और यह द्वैत उसका स्वाभाविक गुण होने से किसी प्रकार भी पृथक् नहीं हो सकेगा और अद्वैतपरक महावाक्य और वेद शास्त्र सब व्यर्थ हो जायेंगे, इसलिए तीन गुणों का, जिनकी विषमता के कारण प्रधान मूल प्रकृति चौबीस अवान्तर भेदों से विभक्त हो रही है अगले सूत्र में वर्णन करते हैं ।

त्रैगुण्यम् ॥ ५ ॥

अर्थः—(चौबीसों जड़ तत्त्व सत्त्व, रजस् और तमस्) तीन गुण वाले हैं ।

संगति—तीनों गुणों का कार्य अगले सूत्र में बतलाते हैं ।

संचरः प्रति संचरः ॥ ६ ॥

अर्थ—सृष्टि और प्रलय (इन तीनों गुणों की अवस्था विशेष है ।)

संगति—अब सृष्टि के अवान्तर भेद बतलाते हैं ।

अध्यात्मसधिभूतमधिदैवं च ॥ ७ ॥

अर्थः—(सृष्टि के तीन अवान्तर भेद हैं) अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव ।

(१) अध्यात्म—जो सीधे अपने साथ सम्बन्ध रखने वाले हैं जैसे, बुद्धि, अहंकार, मन, इन्द्रिय और शरीर ।

(२) अधिभूत—जो अन्य प्राणियों की भिन्न-भिन्न सृष्टि से सम्बन्ध रखने वाले हैं, जैसे गौ, अश्व, पशु-पक्षी आदि ।

(३) अधिदैव—जो दिव्य शक्तियों की सृष्टि से सम्बन्ध रखने वाले हैं —जैसे पृथ्वी, सूर्य आदि ।

संगतिः—मोक्ष की उपयोगिनी अध्यात्म सृष्टि का अगले सूत्रों में वर्णन करते हैं ।

पंचाभिबुद्धयः ॥ ८ ॥

अर्थ—बुद्धि की वृत्तियाँ पांच हैं । प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति ।

पंच दृग्योनयः ॥ ९ ॥

अर्थः—पांच ज्ञान के स्रोत (ज्ञानेन्द्रिय—नेत्र, श्रोत्र, घ्राण, रसना और त्वचा) हैं ।

पंच वायवः ॥ १० ॥

अर्थ—पांच वायु (प्राण) हैं:—प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान ।

पंच कर्मात्मानः ॥ ११ ॥

अर्थ—पांच कर्म की शक्तियां (कर्मेन्द्रियां) हैं । पांच कर्म के करने वाली, वाणी, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा ये पांच शक्तियां कर्मेन्द्रिय कहलाती हैं ।

पंचपर्वा अविद्या ॥ १२ ॥

अर्थ:— पांच गांठों वाली अविद्या है । अविद्या पांच प्रकार की है:— अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ।^१

अष्टविंशतिधाऽशक्तिः ॥ १३ ॥

अर्थ:—अट्ठाईस प्रकार की अशक्ति है, इन्द्रियों के जो ग्यारह बंध हैं; वे बुद्धि के बंधों के साथ मिल कर ११ अशक्ति बतलाई गई हैं । (नौ) तुष्टि और (आठ) सिद्धि से उलटी (नौ अतुष्टियां और आठ असिद्धि) ये सत्रह बुद्धि के बंध (सत्रह अशक्ति) हैं । इस भांति अट्ठाईस प्रकार की अशक्ति हैं ।

नवधा तुष्टिः ॥ १४ ॥

अर्थ:—तुष्टियां नौ प्रकार की हैं । उनमें से चार आध्यात्मिक हैं जिनके नाम प्रकृति, उपादान, काल और भाग्य हैं । पांच बाह्य हैं जो (आत्म साक्षात्कार से पूर्व ही उसके साधन रूप) विषयों में वैराग्य से होती हैं । शब्द-तुष्टि, स्पर्श-तुष्टि, रूप-तुष्टि, रस-तुष्टि और गन्ध-तुष्टि ।^१

अष्टधा सिद्धिः ॥ १५ ॥

अर्थ:—सिद्धि आठ प्रकार की हैं । ऊह, शब्द, अध्ययन, सुहृत्प्राप्ति, दान, आध्यात्मिक दुःखहान, आधिभौतिक दुःखहान और आधिदैविक दुःखहान ।

संगति—आध्यात्मिक विषयों का वर्णन करके अब अगले सूत्र में मूल तत्त्वों का घर्म बतलाते हैं ।

दश मौलिकार्थाः

॥ १६ ॥

अर्थः—दश मूल-भूत धर्म हैं जैसे अस्तित्व, संयोग, वियोग, शेष-वृत्तित्व, एकत्व, अथेवत्व, परार्थ्य, अन्यता, अकर्तृत्व और बहुत्व ।

संगति—अगले सूत्र में सृष्टि की रचना का प्रयोजन बतलाते हैं ।

अनुग्रहः सर्गः ॥ १७ ॥

अर्थ—अनुग्रह सृष्टि है ।

इत्येष प्रकृति कृतो महदादि विशेषभूत पर्यन्तः ।

प्रति पुरुषविमोक्षार्थं स्वार्थ इव परार्थ आरम्भः ॥

सां० का० ५६ ॥

अर्थ—इस प्रकार यह प्रकृति से किया हुआ महत्तत्त्व से लेकर विशेष अर्थात् पांचों स्थूल भूतों और इन्द्रियों तक का आरम्भ प्रत्येक पुरुष के मोक्ष के लिए स्वार्थ के सदृश परार्थ है । जिस प्रकार एक मित्र अपने मित्र के कार्य में प्रवृत्त हुआ उसे अपने स्वार्थ के सदृश साधता है, इसी प्रकार यह प्रकृति पुरुष के प्रयोजन को स्वार्थ की भांति साधती है जब तक वह मोक्ष नहीं पा लेता । मोक्ष पा लेने पर फिर उसके लिए रचना नहीं रचती, यद्यपि दूसरों के लिए रचती है । क्योंकि मुक्त को अब उसकी रचना से कोई प्रयोजन नहीं है ।

औत्सुक्य निवृत्यर्थं यथा क्रियासु प्रवर्तते लोकः ।

पुरुषस्य विमोक्षार्थं प्रवर्तते तद्वदव्यक्तम् ॥

सां० का० ५८ ॥

अर्थ—उत्कण्ठा के मिटाने के लिए जैसे लोक (दुनियाँ) कामों में प्रवृत्त होती है (भूख मिटाने के लिए भोजन में प्रवृत्त होते हैं) इसी प्रकार पुरुष के मोक्ष के लिए प्रधान अर्थात् प्रकृति प्रवृत्त हो रही है ।

संगतिः—अगले सूत्र में प्राणियों की सृष्टि बतलाते हैं ।

चतुर्दशविधो भूत सर्गः ॥ १८ ॥

अर्थः—चौदह प्रकार की प्राणियों की सृष्टि है । आठ प्रकार की दैवी सृष्टि है । पांच प्रकार की तिर्यक् योनियों की है और एक प्रकार की मनुष्य की सृष्टि है ।

ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र, दैव, गान्धर्व, पित्र्य, विदेह और प्रकृतिलय—

ये आठ प्रकार का दैवसर्ग है, जो भिन्न भिन्न कर्मोपासना का फल है। इसके बाद नवां मानुष-सर्ग अर्थात् मानुषी सृष्टि है। और अन्त में मनुष्य से नीचे पशु, पक्षी, सरीसृप अर्थात् रेंगनेवाले जन्तु कीट और स्थावर—इन पांच का तिर्यक् सर्ग है।

उपरोक्त १४ प्रकार की सृष्टि में से मनुष्य से नीचे ५ प्रकार के तिर्यक् सर्ग का तो साक्षात्कार होता है किन्तु मनुष्य के ऊंचे ८ प्रकार के दैव सर्ग का मनुष्यों से सूक्ष्म होने से प्रत्यक्ष नहीं हो सकता केवल समाधि द्वारा हो सकता है।

संगति:—अगले सूत्र में उनका बंध और मोक्ष दिखाते हैं।

त्रिविधो बन्धः ॥ १९ ॥

त्रिविधो मोक्षः ॥ २० ॥

अर्थ:—तीन प्रकार का बन्ध (वैकृतिक, दाक्षिणिक और प्राकृतिक) होता है। तीन प्रकार का मोक्ष (वैकृतिक, दाक्षिणिक और प्राकृतिक) होता है।

त्रिविधं प्रमाणम् ॥ २१ ॥

अर्थ—प्रमाण तीन प्रकार का है (प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम अर्थात् आप्त वचन)

संगति:—तत्त्वज्ञान का फल कहते हुए अगले सूत्र से ग्रन्थ को समाप्त करते हैं।

एतत् सम्यग् ज्ञात्वा कृतकृत्यः स्यात् ।

न पुनस्त्रिविधेन दुःखेनाभिभूयते ॥ २२ ॥

अर्थ—यह ठीक ठीक जान कर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और फिर तीन प्रकार के दुःखों से नहीं दबाया जाता।

पञ्चविंशति तत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसेत् ।

जटी मुण्डी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशयः ॥

(गौड़पादाचार्य)

जिसको (सांख्य में बतलाए हुए) २५ तत्त्वों का (सम्यक्) ज्ञान हो गया है, वह चाहे किसी आश्रम में स्थित हो चाहे गृहस्थ में ही हो चाहे संन्यास में वह अवश्य मुक्त हो जाता है। इसमें कोई भी संशय नहीं है।

॥ ओ३म् ॥

॥ श्रीपातञ्जल योगदर्शनम् ॥

समाधि पादः

अथ योगानुशासनम् ॥१॥

अब योग की शिक्षा देने वाले ग्रन्थ को आरम्भ करते हैं ।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥२॥

चित्त की वृत्तियों को रोकना योग है ।

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्

॥३॥

तब (चित्त की वृत्तियों को रुक जाने पर) द्रष्टा की (शुद्ध परमात्म) स्वरूप में अवस्थिति होती है ।

वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥४॥

दूसरी अर्थात् निरोध से भिन्न व्युत्थान अवस्था में द्रष्टा की वृत्तियों के समानरूपता होती है अर्थात् द्रष्टा वृत्तियों के समानरूप वाला प्रतीत होता है ।

वृत्तयः पञ्चतयः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः ॥५॥

वृत्तियां पांच प्रकार की होती हैं, क्लिष्ट अर्थात् राग-द्वेषादि क्लेशों की हेतु, और अक्लिष्ट अर्थात् राग-द्वेषादि क्लेशों को नाश करने वाली ।

प्रमाण विपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ॥६॥

प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति; ये पांच प्रकार की वृत्तियाँ हैं (जिनका लक्षण अगले सूत्रों में बतलायेंगे) ।

प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥७॥

प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम भेद से तीन प्रकार की प्रमाणवृत्ति हैं ।

विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥८॥

विपर्यय मिथ्याज्ञान है जो उस पदार्थ के रूप में प्रतिष्ठित नहीं है ।

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥९॥

शब्द से उत्पन्न जो ज्ञान, उसके पीछे चलने का जिसका स्वभाव हो

और जो वस्तु की सत्ता की अपेक्षा न रखता हो इस प्रकार का ज्ञान विकल्प कहलाता है ।

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिनिद्रा ॥१०॥

(जाग्रत तथा स्वप्नावस्था की वृत्तियों के) अभाव की प्रतीति को आश्रय करने वाली वृत्ति निद्रा है ।

अनुभूतविषयासंप्रमोषः स्मृतिः ॥११॥

अनुभव किये हुए (किसी) विषय का (फिर चित्त में) आरोह-पूर्वक उससे अधिक नहीं किन्तु तन्मात्र-विषयक ज्ञान होना स्मृति है ।

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥१२॥

अभ्यास और वैराग्य से उन वृत्तियों का निरोध होता है ।

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥१३॥

उन (दोनों अभ्यास और वैराग्य) में से चित्त की स्थिति के विषय में यत्न करना अभ्यास है ।

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः ॥१४॥

किन्तु वह (पूर्वोक्त अभ्यास) दीर्घकालपर्यन्त निरन्तर व्यवधान-रहित ठीक-ठीक श्रद्धा, दीर्घ भक्ति-पूर्वक अनुष्ठान किया हुआ दृढ अवस्था वाला हो जाता है ।

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ॥१५॥

दृष्ट छौर आनुश्रविक विषयों में जिसकी तृष्णा नहीं रही है उसका वैराग्य वशीकार नाम वाला अर्थात् अपर वैराग्य है ।

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥१६॥

विवेक ख्याति द्वारा गुणों से तृष्णा-रहित हो जाना परवैराग्य है ।

वितर्कविचाराऽनन्दाऽस्मितारूपाऽनुगमात् संप्रज्ञातः ॥१७॥

वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता नामक स्वरूपों के सम्बन्ध से जो चित्त की वृत्तियों का निरोध है वह सम्प्रज्ञात समाधि कहलाता है अर्थात् वितर्क के सम्बन्ध से जो समाधि होती है उसका नाम वितर्कानुगत, विचार के सम्बन्ध से विचारानुगत आनन्द के संबंध से आनन्दानुगत और अस्मिता के संबंध से होने वाली समाधि का नाम अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि है ।

विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः

॥१८॥

सर्ववृत्तियों के निरोध का कारण जो परवैराग्य है उसके पुनः पुनः अनुष्ठानरूप अभ्यास से जो उसके संस्कार शेष रह जाते हैं वह असम्प्रज्ञात समाधि है ।

भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥१९॥

विदेह और प्रकृतिलयों को भव-प्रत्यय नामक असम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि प्राप्त होती है ।

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥२०॥

दूसरे योगी जो विदेह और प्रकृतिलय नहीं हैं उनको श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञापूर्वक 'उपाय प्रत्यय' नामक असम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त होती है ।

तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥२१॥

तीव्र सम्वेग अधिमात्र उपाय वाले योगियों को समाधि लाभ शीघ्र-तम होता है ।

मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः ॥२२॥

मृदु, मध्य, अधिमात्र ये तीन भेद होने से मृदु तीव्र सम्वेग वालों और मध्य तीव्र सम्वेग वालों के समाधि लाभ से भी अधिमात्र तीव्र सम्वेग वालों को समाधि लाभ में विशेषता है ।

ईश्वर प्रणिधानाद्वा ॥२३॥

अथवा ईश्वर प्रणिधान से शीघ्रतम समाधि लाभ होता है ।

क्लेशकर्मविषाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥२४॥

क्लेश, कर्म, कर्मों के फल और वासनाओं से असम्बद्ध, अन्य पुरुषों से विशेष (विभिन्न उत्कृष्ट) चेतन ईश्वर है ।

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम् ॥२५॥

उस पूर्वोक्त ईश्वर में सर्वज्ञता का बीज अतिशय (बढ़ती) रहित है ।

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥२६॥

वह ईश्वर पूर्व उत्पन्न हुए ब्रह्मादिकों का भी गुरु है क्योंकि वह काल से परिच्छिन्न (परिमित) नहीं है ।

तस्य वाचकः प्रणवः ॥२७॥

उस ईश्वर का बोधक शब्द ओ३म् है ।

तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥२८॥

उस ओ३म् शब्द का जप और उसके अर्थभूत ईश्वर का ध्यान करना (पुनः पुनः चिन्तन करना) ईश्वर प्रणिधान है ।

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥२९॥

उस ईश्वर प्राणिधान से प्रत्यक्चेतना का ज्ञान (जीवात्मा का साक्षात्कार) भी होता है और अन्तरायों (विघ्नों) का अभाव होता है ।

**व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादाऽऽलस्याऽविरतिभ्रान्तिदर्शनाऽलब्धभूमि-
कत्वाऽनवस्थितत्वानि चित्ताविक्षेपास्तेऽन्तरायाः । ३०॥**

व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्ति-दर्शन, अलब्ध-भूमिकत्व, अनवस्थितत्व, ये चित्त के नौ विक्षेप (योग के) विघ्न हैं ।

दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासाः विक्षेपसहभुवः ॥३१॥

दुःख, दौर्मनस्य, अङ्गमेजयत्व, श्वास-प्रश्वास, ये विक्षेपों के साथ होने वाले हैं अर्थात् उनके होने से यह पांच प्रतिबन्धक भी उपस्थित हो जाते हैं ।

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥३२॥

उन पूर्वोक्त विक्षेपों तथा उपविक्षेपों को दूर करने के लिए एक तत्त्व का अभ्यास करना चाहिए ।

**मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनात-
श्चित्तप्रसादनम् ॥३३॥**

सुखी, दुःखी, पुण्यात्मा और पापियों के विषय में (यथाक्रम) मित्रता, दया, हर्ष और उपेक्षा की भावना के अनुष्ठान से चित्त प्रसन्न और निर्मल होता है ।

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥३४॥

अथवा कोष्ठस्थित (कोठा=उदर में रहने वाली) वायु को नासिकापुट द्वारा (प्रयत्न विशेष) से बाहर फेंकने और बाहर रोकने दोनों से मन की स्थिति को सम्पादन करे ।

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी ॥३५॥

अथवा (गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द) विषयां वाली प्रवृत्ति उत्पन्न हुई मन की स्थिति को बांधने वाली होती है ।

विशोका वा ज्योतिष्मती ॥३६॥

अथवा शोकरहित प्रकाश वाली प्रवृत्ति उत्पन्न हुई मन की स्थिति को बांधने वाली होती है ।

वीतरागविषयं वा चित्तम् ॥३७॥

अथवा राग-रहित योगी-गण के चित्तविषयक संयम करने वाला (आलम्बन करने वाला) चित्त मन की स्थिति को बांधने वाला होता है ।

स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥३८॥

अथवा स्वप्नज्ञान और निद्राज्ञान को आश्रय करने वाला चित्त मन की स्थिति को बांधने वाला होता है ।

यथाभिमतध्यानाद्वा ॥३९॥

अथवा (शास्त्रीय मर्यादानुसार) जो जिसको अभिमत (इष्ट) हो, उसके ध्यान से मन की स्थिति बंध जाती है ।

परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥४०॥

पूर्वोक्त उपायों से स्थित हुए चित्त का सूक्ष्म पदार्थों में परमाणु पर्यन्त और महान् पदार्थों में परम-महान् (आकाश) पर्यन्त वशीकार हो जाता है ।

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेरग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थितदञ्जनता समापत्तिः ॥४१॥

राजस तामस वृत्तिरहित स्वच्छ चित्त की उत्तम जातीय (अति-निर्मल) मणि के समान ग्रहीता (अस्मिता), ग्रहण (इन्द्रियों), ग्राह्य (स्थूल तथा सूक्ष्म विषयों) में स्थित होकर उनमें तन्मय हो जाना (उनके स्वरूप को प्राप्त हो जाना) समापत्ति (तद्रूप होना) है ।

तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णं सवितर्कं समापत्तिः ॥४२॥

उन समापत्तियों में से शब्द, अर्थ और ज्ञान के विकल्पों (भेदों) से मिली हुई (अर्थात् इन तीनों भिन्न पदार्थों का अभेद रूप से जिसमें भान होता है) सवितर्क समापत्ति है ।

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ॥४३॥

स्मृति के शुद्ध हो जाने पर (अर्थात् आगम अनुमान के कारण भूत शब्द के संकेत-स्मरण के निवृत्त होने से) अर्थमात्र से भासने वाली अपने (ग्रहणाकार ज्ञानात्मक) रूप से रहित (चित्तवृत्ति) निर्वितर्क समापत्ति है ।